# M.A-Political Science

## Semester -4

## Contemporary Political Thought

# Unit-I

## Q. 1. आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के उद्भव तथा विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।(What is Modern Political theory? Discuss its main features.)

**उत्तर-** कार्ल पॉपर के शब्दों में, "सिद्धान्त एक प्रकार का जाल है जिसमें विश्व को पकड़ा जा सकता है, ताकि उसको समझा जा सके।" जब मनुष्य ने अपने समीप होने वाली राजनीतिक गतिविधियों को जानने का प्रयास किया, तो इससे राजनीतिक सिद्धान्त का जन्म हुआ। सामान्य अर्थ में मनुष्य ने अनेक राजनीतिक घटनाओं और समस्याओं के बारे में जो निरन्तर विचार किया और इनके बारे में जो निष्कर्ष प्रतिपादित किए, उन्हीं को राजनीतिक सिद्धान्तों का नाम दिया गया।

## राजनीतिक सिद्धान्त का अर्थ (Meaning of Political Theory)

राजनीतिक सिद्धान्त को अंग्रेजी में '**पॉलीटिकल थ्योरी' (political theory)** कहा जाता है। अंग्रेजी भाषा के '**थ्योरी**' शब्द की उत्पत्ति **यूनानी भाषा के 'थ्योरिया' (theoria)** शब्द से हुई है, जिसका **अर्थ है, "एक ऐसी मानसिक दृष्टि जो किसी वस्तु के अस्तित्त्व एवं कारणों को प्रकट करती है।** केवल 'वर्णन' या 'किसी लक्ष्य के बारे में कोई विचार या सुझाव देना' ही सिद्धान्त नहीं कहलाता है, बल्कि आनॉल्ड ब्रैस्ट के शब्दों में, "सिद्धान्त के अन्तर्गत, किसी विषय के सम्बन्ध में एक लेखक की पूरी की पूरी सोच या समझ शामिल रहती है। इसमें तथ्यों का वर्णन, इनकी व्याख्या, लेखक का इतिहास-बोध, उसकी मान्यताएँ और वे लक्ष्य शामिल होते हैं जिनके लिए किसी भी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाता है।"

जहाँ तक राजनीतिक सिद्धान्त का प्रश्न है, अनेक विद्वानों ने अलग-अलग प्रकार से इसको परिभाषित करने का प्रयास किया है। इससे इसकी परिभाषा-सम्बन्धी मतभेद प्रकट हुए हैं। विभिन्न राजनीतिक विद्वानों ने राजनीतिक सिद्धान्त की जो परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं, उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

**डेविड हेल्ड के शब्दों में**, "राजनीतिक सिद्धान्त राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित अवधारणाओं (concepts) और व्यापक अनुमानों (generalizations) का ऐसा ताना-बाना है जिसमें शासन, राज्य और समाज की प्रकृति, तक्ष्यों और मनुष्यों की राजनीतिक क्षमताओं का विवरण शामिल है।"

**जॉन प्लेमेनेज** के शब्दों में, "राजनीतिक सिद्धान्त से मेरा अभिप्रायः सरकार के कुछ कार्यों की व्याख्या करना नहीं है, बल्कि इससे मेरा अभिप्राय सरकार के उद्देश्यों-सम्बन्धी क्रमबद्ध चिन्तन से है।"

**एन्ड्रयू हेकर** के मतानुसार, "राजनीतिक सिद्धान्त एक ओर बिना किसी पक्षपात के अच्छे राज्य एवं समाज की तलाश है, तो दूसरी ओर राजनीतिक एवं सामाजिक वास्तविकताओं की पक्षपात-रहित जानकारी का मिश्रण है।"

**जार्ज सेबाइन** के शब्दों में, "व्यापक रूप से राजनीतिक सिद्धान्त से अभिप्राय उस बात से होता है जो कि राजनीति के बारे में या राजनीति के लिए प्रासंगिक होती है और संकीर्ण रूप से इसका अभिप्राय राजनीतिक समस्याओं की विधिवत छान-बीन से होता है।"

**एन्ड्रयू हेकर** ने अपने ग्रन्थ 'राजनीतिक सिद्धान्त' में राजनीतिक सिद्धान्त के दो अर्थ बताएँ हैं, जिन्हें परम्परागत एवं आधुनिक विचारधाराओं से जोड़ा गया है। प्रथम एवं परम्परागत सन्दर्भ में, इसका अर्थ राजनीतिक विचारों के इतिहास से है, जब कि द्वितीय एवं आधुनिक सन्दर्भ में, इसका प्रयोग राजनीतिक व्यवहार के एक ऐसे यथार्थ एवं क्रमबद्ध अध्ययन के लिए किया जाता है जिसका लक्ष्य मनुष्यों तथा राजनीतिक संस्थाओं के व्यवहार-सम्बन्धी तथ्यों की खोज करना तथा इन्हें क्रमबद्ध करके इनकी व्याख्या तथा सामान्यीकरण विवरण प्रस्तुत करना है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि राजनीतिक सिद्धान्त के अन्तर्गत दार्शनिक एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण से राज्य एवं सरकार का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राजनीतिक सिद्धान्त

में **अवलोकन (observation), व्याख्या (explanation) एवं मूल्यांकन (value-judgement) तीन तत्त्व** शामिल होते हैं। इन तीनों तत्त्वों का वर्णन इस प्रकार से है-

**1. अवलोकन (Observation)**- जो राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्री वैज्ञानिक पद्धति को अपनाते हैं, ये अध्ययन-क्षेत्र में पहुँचकर मानवीय व्यवहार का अवलोकन करते हैं। इसके लिए वे राज्य, शासन एवं समाज से सम्बन्धित तथ्यों अथवा आंकड़ों का संग्रह करते हैं और बाद में इनका विश्लेषण करके कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए, लार्ड ब्राइस ने लोकतान्त्रिक सरकारों की सफलता एवं असफलता की जाँच के लिए न केवल ग्रन्थों का ही सहारा लिया, बल्कि अपने समय की छः प्रमुख देशों की लोकतान्त्रिक पद्धतियों का निकट से अध्ययन भी किया।

**2. व्याख्या (Explanation)**- तथ्यों या आंकड़ों का संग्रह करने के उपरान्त एक सिद्धान्तशास्त्री अनावश्यक तथ्य-सामग्री को अलग कर देता है और बची हुई आवश्यक तथ्य-सामग्री को अनेक श्रेणियों या वर्गों में विभक्त करता है और इसके उपरान्त वह तथ्यों या आंकड़ों का विश्लेषण करता है और कारण-कार्य (cause and effect) का सम्बन्ध स्थापित करता है। इस आधार पर वह जो निष्कर्ष प्रतिपादित करता है या परिणाम निकालता है, उसे हम सिद्धान्त की संज्ञा देते हैं। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि तथ्यों का अवलोकन सिर्फ 'तथ्यात्मकता' तक ही सीमित होता है, जब कि इनकी व्याख्या एक सिद्धान्त का रूप ग्रहण कर लेती है। इसे हम सामान्यीकरण (generalization) की संज्ञा भी दे सकते हैं, जिसका अर्थ होता है- 'निष्कर्ष को सामान्य नियम का रूप दे देना।'

**3. मूल्यांकन (Value-judgement)** - सिद्धान्त-निर्माण की प्रक्रिया में तथ्य एवं मूल्य (facts and values) दोनों ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। डेविड हैल्ड का मत है कि आदर्शात्मक प्रश्नों (normative questions) से राजनीतिक सिद्धान्त बच नहीं सकता है। केवल वर्णन और व्याख्या से काम नहीं चलता है। राजनीतिक सिद्धान्त की किसी भी पुस्तक में दर्शन और विज्ञान एक-दूसरे का स्थान नहीं ले सकते हैं अर्थात् एक राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्री वैज्ञानिक और दार्शनिक दोनों की भूमिका का निर्वाह करता है। एक ओर वह वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करते हुए तथ्यों का संग्रह करता है, तो दूसरी ओर वह अपने मूल्यों एवं आदर्शों की उपेक्षा नहीं कर पाता है। यही कारण है कि वह लोकतन्त्र, स्वतन्त्रता, समानता एवं न्याय आदि का मूल्यांकन करते समय अपने मूल्यों और आदर्शों को इससे पृथक् नहीं रख पाता है। कई बार एक सिद्धान्तशास्त्री अपने पूर्व-निर्धारित मूल्यों एवं आदर्शों को स्थापित करने के लिए ही किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाला सिद्धान्तशास्त्री अपने मूल्यों एवं आदशों से परे जाकर अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। इन दोनों ही स्थितियों में मूल्यों एवं आदशों का महत्त्व बना रहता है।

इस तरह स्पष्ट है कि राजनीतिक सिद्धान्त का सम्बन्ध केवल राज्य एवं सरकार के वर्णन या व्याख्या से ही नहीं, बल्कि इनके उद्देश्यों का मूल्यांकन करने से भी होता है

## आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएँ/प्रकृति (Main Features/Nature of Modern Political Theory)

1953 में डेविड ईस्टन की पुस्तक 'दी पॉलीटिकल सिस्टम' अस्तित्त्व में आई जिसमें उसने व्यवस्था पद्धति को अपनाया। राजनीति के कई सिद्धान्तशास्त्रियों ने राजनीति में 'व्यवहारवादी क्रान्ति' के नाम से जानी जाने वाली नवीन एक क्रान्ति को जन्म दिया। यह क्रान्ति एक प्रकार से परम्परागत सिद्धान्तशास्त्रियों के प्रति असन्तोष का परिणाम थी। व्यवहारवादी लेखकों में राबर्ट ए. डहल, डेविड ईस्टन और जी. बी. पावेल का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इन्होंने प्राकृतिक विज्ञानों की तरह राजनीतिक को 'विशुद्ध विज्ञान' बनाने पर बल दिया। इन्होंने राजनीतिक संस्थाओं, राजनीतिक दलों व दबाव गुटों के व्यवहारिक आचरण के अध्ययन पर बल दिया। 1970 के दशक में विज्ञान और दर्शन के बीच का विवाद ठण्डा पड़ने लगा। अब ऐसे विद्वान सामने आए जिन्होंने वैज्ञानिक पद्धति से अपना नाता तो नहीं तोड़ा, लेकिन अपने अध्ययन में मूल्यों का भी परित्याग नहीं किया। कार्ल पॉपर एवं जॉन राल्स की गिनती ऐसे ही विद्वानों में की जाती है। आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त निरन्तर विकास की दिशा में अग्रसर है। इसकी कुछ प्रमुख **विशेषताएँ** इस प्रकार है-

**1. विश्लेषणात्मक अध्ययन (Analytical Study)**- आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्रियों ने विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया है क्योंकि ये राजनीतिक संस्थाओं के वर्णन से सन्तुष्ट नहीं थे। ये राजनीतिक वास्तविकताओं को जानना चाहते थे, इसीलिए इन्होंने राजनीतिक संस्थाओं के व्यवहार के विश्लेषण पर बल दिया। इसके लिए इन्होंने अनौपचारिक संरचनाओं, राजनीतिक प्रक्रियाओं व व्यवहार का वर्णन न करके इनका विश्लेषण प्रस्तुत करना ही उचित समझा। ईस्टन, डहल, आमण्ड तथा वेबर आदि विद्वानों ने राजनीतिक संस्थाओं को संचालित करने वाले व्यक्ति के कार्यों एवं व्यवहार के विश्लेषण पर बल दिया क्योंकि इससे राजनीतिक व्यवस्था को आसानी से समझा जा सकता है।

**2. अध्ययन का अन्तःशास्त्रीय दृष्टिकोण** (Inter-disciplinary Approach to the Study)-आधुनिक विद्वानों की धारणा है कि राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था की अनेक उप-व्यवस्थाओं में से है और इसीलिए अन्य उप-व्यवस्थाओं के अध्ययन से पृथक् रखकर इसका अध्ययन नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः प्रत्येक उप-व्यवस्था अन्य उप-व्यवस्थाओं से प्रभावित होती है और यही बात राजनीतिक व्यवस्था पर भी लागू होती है। अतः किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को ठीक ढंग से समझने के लिए सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करना भी आवश्यक हो जाता है। यही कारण है कि आज राजनीति विज्ञान बड़ी तेजी से समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान की अध्ययन-पद्धतियों और निष्कर्षों को ग्रहण करता जा रहा है।

**3. आनुभविक अध्ययन (Empirical Study)** - राजनीति के आधुनिक विद्वानों ने राजनीति को विशुद्ध विज्ञान बनाने के लिए तथ्यों की नाप-तौल पर विशेष रूप से बल दिया है। इसके लिए इन्होंने नवीन तकनीकें अपनाई हैं; जैसे-जनगणना अभिलेखों और आंकड़ों का विश्लेषण करना तथा जनमत जानने की विधियों (opinion polls)-साक्षात्कार, प्रश्नावलियों और अनुसूचियों के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकालना। इस विषय में डेविड ईस्टन का विचार है, "खोज सुव्यवस्थित रूप से ही जानी चाहिए। यदि कोई सिद्धान्त आंकड़ों पर आधारित नहीं है, तो वह निरर्थक ही सिद्ध होगा।" आधुनिक विद्वान लोकतान्त्रिक शासन के आदर्श स्वरूप के अध्ययन में रुचि नहीं रखते हैं, बल्कि ये लोकतन्त्र के व्यावहारिक रूप का आनुभविक अध्ययन करना ही पसन्द करते हैं और ऐसे अध्ययनों से इन्होंने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि अन्य शासन पद्धतियों की तरह लोकतान्त्रिक पद्धति में एक छोटा विशिष्ट जन (elite) शासन करता है। स्पष्ट है कि विशिष्ट जन का सिद्धान्त लोकतन्त्र के आनुभविक अध्ययन का ही परिणाम है।

**4. मूल्य-निरपेक्ष अध्ययन (Value-free Study)** - आधुनिक राजनीतिक विद्वानों, विशेषकर व्यवहारवादी विद्वानों ने 'मूल्य-निपरेक्ष राजनीति विज्ञान' का समर्थन किया है। ये इस बात पर बल देते हैं कि कोई सिद्धान्त प्रतिपादित करते समय राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्रियों को मूल्य-निरपेक्ष होना चाहिए अर्थात् मूल्यों के प्रति तटस्थ रहना चाहिए। इन्हें 'क्या होना चाहिए' की जगह 'क्या है' का ही उत्तर खोजना चाहिए और इन्हें सही या गलत के प्रश्नों से दूर रहना चाहिए।

**5. अनौपचारिक तत्त्वों का अध्ययन** (Study of Informal Elements) - आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्री औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं यथा संसद, मन्त्रिमण्डल एवं न्यायालय आदि के अध्ययन को अधूरा मानते हैं। अतः वे इन औपचारिक संस्थाओं के अध्ययन के साथ-साथ अनौपचारिक संस्थाओं के अध्ययन पर भी बल देते हैं। वस्तुतः ये अनौपचारिक कारक या तत्त्व औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं के व्यवहार को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। इसीलिए ये आधुनिक अध्ययनों का केन्द्र-बिन्दु बन गए हैं।

**6. राजनीति के अध्ययन में मूल्यों की पुनः स्थापना** (Re-affirmation of Values in the Study of Politics)-व्यवहारवादी क्रान्ति के दौर में ऐसा लगने लगा था कि राजनीतिक सिद्धान्त पूरी तरह मूल्य-निरपेक्ष बन जाएंगे, किन्तु शीघ्र ही 'उत्तर-व्यवहारवाद' के नाम से जानी गई एक नवीन क्रान्ति का सूत्र-पात हुआ जिसके अन्तर्गत मूल्यों की पुनः स्थापना पर बल दिया गया। जब यह स्वीकार किया जाने लगा कि राजनीति विज्ञान प्राकृतिक विज्ञानों की भांति पूरी तरह मूल्य-निरपेक्ष नहीं हो सकता है। इसीलिए आधुनिक विद्वानों ने मानकीय उपागम (normative approach) और व्यवहारिक उपागम के बीच ताल -मेल बिठाने पर बल दिया है। इत विषय में ईस्टन ने लिखा है, "यह मानकर चलना गलत है कि मूल्य-निरपेक्ष हुए बिना कोई व्यक्ति वैज्ञानिक हो ही नहीं सकता है। इस तरह लोकतन्त्र, स्वतन्त्रता, समानता और न्याय जैसे मूल्यों से जुड़े रहकर भी वैज्ञानिक विश्लेषण करना सम्भव है।"

**7. समस्या समाधान का प्रयास** (Problem-solving Efforts)- आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्रियों द्वारा मूल्यों को पुनः स्वीकार कर लेने का एक स्वाभाविक परिणाम यह निकला कि ये समस्याओं के समाधान में जुट गए। ये सिद्धान्तशास्त्री जिन समस्याओं से जूझ रहे हैं, वे हैं-युद्ध और शान्ति, बेरोजगारी, असमानता, सामाजिक उथल-पुथल, पर्यावरण और वैश्वीकरण। जहाँ तक व्यक्ति की स्वतन्त्रता, राज्य की सत्ता, लोकतन्त्र और न्यास जैसी अवधारणाओं का प्रश्न हैं, तो ये तो राजनीति विज्ञान के स्थाई मुद्दे हैं।

**8. सिद्धान्त प्राथमिक अवस्था में (**The Theories are in Primary Stage)- आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तों की एक विशेषता यह है कि ये अभी अपने शैशव काल में ही हैं। इनका निरन्तर विकास हो रहा है, किन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि इनके विकास में कितने वर्ष लग जाएंगे। जब हम 'सिद्धान्त' शब्द का व्यापक अर्थों में प्रयाग करते हैं, तो हमें ऐसा लगता है कि आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त स्थापित हो चुके हैं, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि से अभी उपागम (approach) ही बन पाए हैं। वस्तुतः सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त (General Systerms theory), निर्णय-निर्माण सिद्धान्त (Decision-making theory), संचार सिद्धान्त (Communication theory), खेल-सिद्धान्त (Game theory) अभी तक उपागम ही हैं; न कि सिद्धान्त।

**9. सामाजिक सन्दर्भयुक्त अध्ययन (So**cial Content-oriented Study)- आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तों के निर्माता मानते हैं कि राजनीतिक प्रक्रियाओं का सामाजिक अन्तःक्रिया से गहन सम्बन्ध है। अतः राजनीतिक प्रक्रिया का अध्ययन सामाजिक अन्तःक्रिया के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिए। यही कारण है कि आधुनिक सिद्धान्तशास्त्री, सामाजिक संस्थाओं, परम्पराओं और मूल्यों का भी अध्ययन करने लगे हैं। उदाहरण के लिए पहले सम्प्रभुत्ता की परिभाषा कानूनी दृष्टिकोण से की जाती थी, किन्तु अब इस तथ्य को ये लोग स्वीकार करने लगे हैं कि सामाजिक मांगों और दवावों का सम्प्रभुत्ता पर व्यापक रूप से असर पड़ता है। अतः आधुनिक समय में सम्प्रभुत्ता की यह परिभाषा कि यह राज्य की सर्वोच्च शक्ति है, सही नहीं है। इसके विपरीत, यह कहना अधिक सही होगा कि सम्प्रभुत्ता राजनीतिक समाज की वह सर्वोच्च शक्ति है जो राज्य के नागरिकों में निहित होती है।

**Q. 2. व्यवहारवाद का उद्भव एवं विशेषताएं बताइए तथा आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।**

**उत्तर:** व्यवहारवाद राजनीतिक तथ्यों की व्याख्या एवं विश्लेषण का एक विशिष्ट तरीका है जिसे द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिकी राजनीति वैज्ञानिकों ने विकसित किया है, यद्यपि इसकी जड़ें प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व ग्राहम वालास व ए. एफ. बैंटले आदि में दिखाई देती है। व्यवहारवाद का अर्थ सुनिश्चित नहीं है। इसे अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। डेविड के मतानुसार जितने व्यवहारवादी हैं, उतने ही व्यवहारवाद के अर्थ हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार यह केवल एक मनोदशा (mood) या मनोवृत्ति (attitude) है, तो कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार इसके अपने निश्चित विचार, सिद्धांत एवं कार्य-विधियाँ (procedures) हैं।

सामान्य रूप से मानव के व्यवहार को अध्ययन, अवलोकन, व्याख्या एवं निष्कर्षण आदि का आधार मानने की प्रवृत्ति अथवा दृष्टिकोण व्यवहारवाद कहलाता है। इस तरह 'व्यवहारवाद' शब्द स्वयं में बहुत व्यापक है। व्यवहारवाद मानव व्यवहार के अवलोकन पर आधारित अध्ययन पर बल देने वाली एक विचारधारा या पद्धति है।

**बैरलसन** के अनुसार व्यवहारवाद का वैज्ञानिक लक्ष्य, "मानव व्यवहार के विषय में ऐसे सामान्यीकरण (generalizations) प्राप्त करना है जिन्हें निष्पक्ष एवं वस्तुपरक ढंग से एकत्रित आनुभविक प्रमाणों द्वारा पुष्ट किया गया है।"

डेविड ट्रूमैन के मतानुसार यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसका उद्देश्य शासन के समस्त तथ्यों का मानव के प्रेक्षित एवं प्रेक्षणीय व्यवहार की शब्दावली में वर्णन करना है राबर्ट ए. डहल के शब्दों में, "व्यवहारवादी क्रांति परंपरागत राजनीति विज्ञान की उपलब्धियों के प्रति असंतोष का परिणाम है।"

## व्यवहारवाद की उत्पत्ति अथवा उद्भव (Origin or Evolution of Behaviouralism)

'व्यवहार' शब्द के प्रचलन की समाज विज्ञानों में कोई संभावना न थी। इसका प्रचलन एवं व्यापकता स्वयं में एक विचित्र-सी घटना है। अमेरिका में सीनेट के बहुत से सदस्य 'समाज विज्ञान' के नाम से चिड़ते थे क्योंकि इसमें इनको 'समाजवादी विज्ञान' होने की गंध आती थी। इधर समाज वैज्ञानिक आर्थिक सहायता पाने के लिए प्रयासरत थे। जब सीनेट की एक समिति के सामने एक राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान को उच्च-स्तरीय शोध की सहायता और बढ़ाने का प्रश्न आया, तो सीनेट ने उन सदस्यों की सनक को देखते हुए उन्होंने समाज-विज्ञानों को 'व्यवहारवादी विज्ञान' (Behavioural Sciences) की संज्ञा दे डाली जिसमें कि यह शब्द प्राणिशास्त्रीय विज्ञान और समाज विज्ञान दोनों प्रकार के विज्ञानों को समाहित कर सके। इसी समय फोर्ड संस्थान (Ford Foundation) की स्थापना के समय समाज-विज्ञानों के वैज्ञानिक विकास के लिए जो शाखा (section) गठित की गई, उसका नाम 'व्यवहारवादी विज्ञान सम्भाग' (Behavioural Science Division) रखा गया। इन दो अप्रत्याशित घटनाओं ने 'व्यवहारवाद' नाम को लोकप्रिय बना दिया। वस्तुतः यह अच्छा ही हुआ क्योंकि इससे इसे आनुभाविक सिद्धांत का निर्माण करने तथा समाज-विज्ञानों में मौलिक एकता (basic unity) स्थापित करने की प्रेरणा मिली। इसके बाद अमेरिका में यह एक बौद्धिक प्रकृति के रूप में एक प्रभावशाली आंदोलन का रूप धारण कर लिया।

जहाँ तक राजनीति विज्ञान में व्यवहारवाद का प्रश्न है, इसका प्रारंभ समाज-मनोविज्ञान (Social Psychology) के प्रभाव से उस समय हुआ, जब 1908 में **ग्राहम वालास** की 'ह्यूमेन नेचर इन पोलिटिक्स' (Human Nature in Politics) तथा **आर्थर बैण्टले** की 'दी प्रोसेस ऑफ गवर्नमेण्ट' (The Process of Government) नामक पुस्तकें अस्तिव में आई। वलास ने राजनीति विज्ञान के विद्वानों द्वारा संस्थाओं का विश्लेषण करने और मानव के व्यवहार का विश्लेषण करने की प्रवृत्ति के प्रति असंतोष व्यक्त किया। इसी तरह वैण्टले ने प्रकार्यात्मक सम्बन्धों और विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों तथा समूह-प्रक्रियाओं (group processes) के अध्ययन पर वैज्ञानिक की तरह ध्यान केन्द्रित करने का तर्क प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् **चार्ल्स ई. मेरियम** ने 'अमेरिकन पोलिटकल साईन्स एसोसिएशन' की एक समिति के अध्यक्ष होने के नाते 1923 में इस नवीन रुझान को समर्थन दिया। उनकी पुस्तक '**राजनीति के नए आयाम' (New Aspects of Politics) 1925** में प्रकाशित हुई। अमेरिका में मेरियम की प्रेरणा से यथार्थवादी एवं परिमाणात्मक अध्ययन किए जाने लगे। इसी से प्रेरित होकर '**शिकागो-सम्प्रदाय**' जो मनोवैज्ञानिक आयामों के भीतर राजनीति विज्ञान के अध्ययन-अध्यापन का कार्य कर रहा था, व्यवहारवाद का प्रमुख केंद्र बन गया। इसको सहारा और शक्ति नव स्थापित 'अमेरिकन पोलिटिकल साईंस एसोसिएशन' और 'सोशल साईंस रिसर्च कौंसिल' के माध्यम से मिली। इसके बाद अनेक निजी संस्थानों जैसे फोर्ड, कारनेगी, रॉकफेलर आदि करोड़ों डॉलर समाज विज्ञानों के विकास पर व्यय किए। इससे व्यवहारादी दृष्टिकोण व्यापक बन गया। ग्रेट-ब्रिटेन में यही विचार जी. ई. जी. कैटलिन की 'विज्ञान और राजनीति की पद्धति' (The Science and Mathods of Polics) और 'राजनीति के सिद्धांतों का एक अध्ययन' (A Study of the Principles of Politics) के क्रमशः 1927 और 1930 में प्रकाशित पुस्तकों में प्रकट हुआ। इसके बाद तो राजनीतिक व्यवहारवाद एक मानसिक प्रवृत्ति या सेबाइन के शब्दों में एक 'मनोदशा' बन गया और राजनीति विज्ञान ने इसे आत्मसात कर लिया। कुछ व्यवहारवादी इसे एक पद्धति-मात्र मानने लगे तो कुछ इसे एक उपागम और कुछ अन्य इसे एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के रूप में स्वीकार करने लगे। कुछ राजनीति शास्त्री तो इसे इन सबसे अधिक महत्त्व देने लगे।

## व्यवहारवाद की विशेषताएं

प्रसिद्ध राजनीति वैज्ञानिक **डेविड ईस्टन** ने अपने एक लेख 'व्यवहारवाद का वर्तमान अर्थ' (**The Current Meaning of Behaviouralism)** में व्यवहारवाद की आठ मान्यताओं या विशेषताओं का उल्लेख किया है। जो इस प्रकार हैं—

**1. नियमिताएँ (Regularitus)**- मानव के राजनीतिक व्यवहार में खोज किए जाने योग्य समानताएँ पाई जाती हैं अर्थात् मानव बार-बार समान व्यवहार करता है और उसके व्यवहार सम्बन्धी इन समानताओं का अवलोकन करके पता लगाया जा सकता है और व्याख्यात्मक एवं पूर्वकथनीयता (prediction) के लिए सामान्यीकरण अथवा सिद्धांतों के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है।

**2. सत्यापन (Varification)**-जिन नियमिताओं के आधार पर मानव-व्यवहार सम्बन्धी जो सामान्यीकरण प्राप्त किए जाते हैं तथा सिद्धांत विकसित किए जाते हैं, उनकी प्रमाणिकता की जाँच की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, व्यवहारवादी निष्कर्ष जाँच किए जाने योग्य होते हैं।

**3. प्रविधियां (Techniques)** —मानव व्यवहार के अध्ययन के लिए कुछ निश्चित प्रविधियों की आवश्यकता होती है। ऐसी प्रविधियों स्वयं सिद्ध नहीं होती हैं। अतः ऐसी प्रविधियों को सावधानीपूर्वक शुद्ध एवं प्रमाणित (validate) किया जाना चाहिए जिससे कि ये स्वीकार्य एवं मान्य बन जाएं ताकि मानव व्यवहार का पर्यवेक्षण, अभिलेख एवं विश्लेषण किया जा सके।

**4. परिमाणीकरण (Quantification)-**व्यवहारवादी अध्ययन द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को यथा तथ्य (precise) बनाने के लिए इनका मापन व परिमाणीकरण किया जाना चाहिए। बस्तुतः परमाणीकृत आधार-सामग्री या आंकड़ों के आधार पर ही व्यवहार के सम्बन्ध सही समझ प्राप्त की जाती है। परिमाणीकरण से अध्ययन में सूक्ष्मता तथा प्रमाणिकता आ जाती है। करना

**5. मूल्य (Values)**-व्यवहारवादी अध्ययन की एक यह विशेषता है कि इसमें अध्ययनकर्ता अपने निजी मूल्यों, आदशों, भावनाओं एवं आकांक्षाओं को अपने अध्ययन से पृथक् रखता है अर्थात् उसका अध्ययन मूल्य-निरपेक्ष (value-free) होता है। उसकी दृष्टि में कोई भी वस्तु स्वयं अच्छी या बुरी नहीं होती। इस नाते वह मूल्यों को तथ्यों (facts) से सर्वथा पृथक् रखता है।

**6. क्रमबद्धीकरण (Systematization)**-व्यवहारवाद की मान्यता है कि राजनीति विज्ञान में शोध का रुझान (orientation) सिद्धांत की ओर होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शोध एवं सिद्धांत का एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए क्योंकि यदि ऐसा नहीं होगा तो शोध निरर्थक हो जाएगा और सिद्धांत की सार्थकता नष्ट हो जाएगी। वस्तुतः शोध एवं सिद्धांत को एक-दूसरे से सम्बद्ध करके ही दोनों के प्रयोजनों को प्राप्त किया जा सकता है।

**7. विशुद्ध विज्ञान (Pure Science)**-व्यवहारवाद मानव व्यवहार का एक विशुद्ध विज्ञान विकसित करने में विश्वास रखता है। व्यवहारवादी सामान्य रूप से विशुद्ध विज्ञान के प्रयोग का आग्रह करते हैं। वैसे उन्हें यह बात स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होती कि सैद्धांतिक समझ जीवन की समस्याओं को समझने में सहायक हो सकती है, किन्तु वे इस बात पर बल देते हैं कि राजनीतिक व्यवहार की समझ तथा उसकी व्याख्या पहले आती है और व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में इसका प्रयोग बाद में आता है।

**8. एकीकरण (Integration)**-व्यवहारवाद अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ राजनीति विज्ञान के एकीकरण पर बल देता है। इसकी मान्यता के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक या अन्य प्रकार के क्रिया-कलापों के बीच स्पष्ट विभाजन-रेखाएँ खींचना संभव नहीं है। यथार्थ में ये कार्यकलाप केवल तब ही बोधगम्य हो सकते हैं जब उन्हें जीवन की समग्रता के संदर्भ में अवलोकित किया जाता है। इसीलिए राजनीतिक मनुष्य को सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक मनुष्य से अलग नहीं किया जाना चाहिए।

### व्यवहारवाद की आलोचना (Criticism of Behaviouralism)

यह सत्य है की व्यवहारवाद के कारण राजनीति विज्ञान का विस्तार और अधिक व्यापक हो गया है और इससे राजनीतिक सिद्धांत को समझने व उसकी व्याख्या करने के विषय में सुधार हुआ है, फिर भी इसमें निम्नलिखित दोष देखने को मिलते हैं-

1. यह ज्ञान के मिथ्या सिद्धांत पर आधारित हैं क्योंकि इसमें केवल तथ्यों को ही वास्तविक समझा जाता है। इसके विपरीत विश्वव्यापी मान्यताएँ भी उतनी ही स्वीकार्य होती है जितने कि तथ्य। वस्तुतः तथ्यों का अर्थ केवल विश्वव्यापी मान्यताओं के सम्बन्ध में ही हो सकता है।

2. यह वैज्ञानिक विधि की मिथ्या संकल्पना पर आधारित है क्योंकि तथ्यों को एकत्रित करने और उनके मापन एवं परिमाणीकरण का कार्य करने के उपरान्त अध्ययनकर्ता इनके आधार पर कोई निष्कर्ष निकालते समय स्वयं को अपनी आत्मनिष्ठता या अपनी मूल्य करने की भावना के बंधनों से मुक्त नहीं कर पाता है। इस तरह एक प्राकृतिक विज्ञान की निश्चिता

को समाज विज्ञानों में नहीं लाया जा सकता है।

3. इस बात पर बल देते हुए कि अध्ययनकर्ता को राजनीतिक जीवन के उन्हीं पक्षों का अध्ययन करना चाहिए जिनको मापा या परिमाणित किया जा सके, यह राजनीति विज्ञान के विस्तृत दायरे को सीमित कर देता है। इस तरह इसने एक चिंतनात्मक राजनीतिक सिद्धांत के महत्त्व को 'पागल विज्ञानवाद' की शुष्क और बाँझ उत्कंठा की बलिवेदी पर न्यौछावर कर देता है।

4. अंत में यह निर्धारित करके कि समस्त राजनीतिक गतिविधियों और संस्थाएँ समाज की प्रकृति को स्पष्ट करती हैं और बहुत सीमा तक इनका निर्धारण समाज के भीतर के विभागों के आधार पर किया जाता है, इसने राजनीति विज्ञान को समाज विज्ञानों का दास बना दिया है।

## 3. उत्तर व्यवहारवाद का अर्थ बताइए। व्यवहारवाद तथा उत्तर व्यवहारवाद के मध्य अंतरों का विश्लेषण बताइए।

**उत्तर**-व्यवहारवाद की मुख्य विशेषताओं का विवेचन कीजिए। क्या इसे परंपरावाद का पुनरूत्थान कहा जा सकता है? अपने उत्तर के समर्थन में तर्क दीजिए ।

(Discuss the main features of Post-Behaviouralism. Can it be termd as revival of Tradionalism? Give arguments in support of your answer.)

उत्तर- **उत्तर-व्यवहारवाद : एक परिचय (Post-behaviouralism: An Introduction)**

अभी व्यवहारवादी क्रांति समाप्त भी न हो पाई थी कि इसे तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक संकटों ने घेर लिया और इसको चुनौतियाँ दी जाने लगीं। डेविड ईस्टन ने इस नवीन स्थिति को 'उत्तर-व्यवहारवादी क्रांति' (Post-behavioural Revolution) की संज्ञा दी है) इस तरह उत्तर-व्यवहारवाद व्यवहारवाद की अगली अवस्था, एक प्रतिक्रिया एवं एक सुधार आंदोलन बनकर उभरा है, किन्तु यह किसी भी दृष्टि से प्रति-क्रांति (counter-revolution) नहीं है। इसीलिए इसे पुनः परंपरावाद या शास्त्रीय चिंतन की विचारधारा की स्वीकृति नहीं कहा जा सकता है। व**स्तुतः उत्तर-व्यवहारवाद विकासमान व्यवहारवाद का सूचक है और इसके नारे हैं कर्म (action) और संगति (relevance)। यह चुनौतियों का अध्ययन करने और इनके समाधान ढूँढ़ने की मांग करता है। यह इस बात पर बल देता है कि शोध-कार्य समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए अर्थात् यह संगतिपूर्ण (relevant) अथवा प्रासंगिक होना चाहिए।** दूसरे शब्दों में, मूल्य-निरपेक्ष या तटस्थ-भाव से अध्ययन करने के स्थान पर, यह राजनीति शास्त्रियों से यह मांग करता है कि वे ऐसा अध्ययन करें जो समाज के लिए प्रासंगिक हो।)

**ईस्टन** ने अपनी पुस्तक 'राजनीतिक व्यवस्था' (The Political System) के संशोधित संस्करण में उत्तर-व्यवहारवाद के तीन स्रोत बताए हैं-

1. राजनीति विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान बनाने के प्रयत्नों के प्रति असंतोष,

2. भावी समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने की तीव्र इच्छा; तथा

3. एक बौद्धिक प्रवृत्ति तथा एक समूह के रूप में स्वयं राजनीति वैज्ञानिकों द्वारा आंदोलन का संचालन ।

**उत्तर-व्यवहारवाद की प्रमुख विशेषताएँ (Main Features of Post-Behaviouralism)**

राजनीति विज्ञान में उत्तर-व्यवहारवाद कुछ नवीन विशेषताओं के साथ प्रकट हुआ है। डेविड ईस्टन व्यवहारवाद का प्रमुख प्रवर्तक है, ने 'अमेरिकन पॉलिटिकल साइन्स एसोसियेशन' के 65वें अध्यक्षीय भाषण (1969 में इस नवीन प्रतिक्रिया, जिसे संश्लेषण के रूप में देखा जा सकता है, के निम्नलिखित तीन लक्षणों अथवा विशेषताओ का उल्लेख किया है-

1. वर्तमान समय में राजनीति विज्ञान में जिस तरह के शोध जारी हैं, इसमें उनके प्रति गहरा असंतोष देखने को मिलता है। शोध एवं शिक्षण में राजनीति के अध्ययन को वैज्ञानिक अध्ययन में रूपान्तरित करने का जबरदस्त प्रयास किया जा रहा है ताकि यह प्राकृतिक विज्ञानों के पद्धति-विज्ञान (Methodology) पर प्रतिरूपित किया जा सके।

2. उत्तर व्यवहारवाद भविष्योन्मुख है जो एक मौलिक क्रांति को सुधार के रूप में लागू करने में लगा है। यह स्वयं को समाज के लिए प्रासंगिक बनाकर अपने भविष्य को अधिकाधिक आरक्षित रखना चाहता है।

3. यह एक व्यक्ति-समूह तथा एक बौद्धिक प्रवृत्ति दोनों ही है, किन्तु अभी तक यह किसी संगठित समूह, किसी राजनीतिक विचारधारा या पद्धति-विज्ञान की विशेष प्रविधियों (techniques) से सम्बन्ध नहीं हुआ है। इस अभिनव आंदोलन में विशुद्ध वैज्ञानिक एवं निष्ठावान शास्त्रीय-विद्वान दोनों ही प्रकार के विद्वान शामिल हैं।

1. यह प्रविधि (techniques) से पहले उन वास्तविकताओं को महत्त्व देता है जो वर्तमान सामाजिक समस्याओं की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। विज्ञान का मूलमंत्र है- अस्पष्ट होने से गलत होना अच्छा है। उत्तर व्यवहारवादी विद्वान् इसको एक नवीन सूक्ति से प्रतिस्थापित (replace) करते हैं कि असंगतिपूर्ण (irrelevant) परिशुद्धता की अपेक्षा अस्पष्ट होना अच्छा है। इसका अर्थ है कि उत्तर-व्यवहारवादी वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में अपने अध्ययनों को संगतिपूर्ण बनाना चाहते हैं।

2. उत्तर-व्यवहारवाद में एक आनुभाविक सामाजिक रूढ़िवाद की विचारधारा छिपी हुई है क्योंकि इसने समसामयिक दशाओं को बनाए रखने का समर्थन किया है।

3. पूर्व-व्यवहारवादी (pre-behavioural) अनुसंधान वास्तविकता या यथार्थ से अपना नाता समाप्त कर चुका था, किन्तु उत्तर-व्यवहारवाद अब अपना मौन तोड़ चुका है और यह यथार्थ की भाषा अपनाने को तैयार है, जिससे कि आने वाले संकटों का सामना किया जा सके और मानव जाति को रचनात्मक सहयोग दिया जा सके।

4. यह इस बात पर बल देता है कि एक अनुसंधान-कर्ता को अपने ज्ञान की सीमाओं को जानने के लिए स्वयं को अपने मूल्य-आमुखों (value-premises) के प्रति सजग रखना चाहिए क्योंकि ये ही इन सीमाओं का निर्धारण करते हैं। चाहे जितनी भी कोशिश क्यों न की जाएं अनुसंधान-कर्ता कभी भी मूल्यांकन करते समय तटस्थ नहीं रह सकता है।

5. इस विषय के सभी विद्वान् सभी बुद्धिजीवियों की इस जिम्मेदारी को उठाते हैं कि उन्हें इस सभ्यता के मानवीय मूल्यों को आरक्षित रखना है। यदि ये ऐसा नहीं करेंगे तो ये केवल यंत्र-विद् (technicians) बनकर रह जाएंगे और ऐसी स्थिति में उन्हें गवेषणा की स्वतंत्रता एवं समाज के आघातों (onslaughts) से राज्य के संरक्षण पाने के विशेषाधिकारों को अपने पास रखने का कोई अधिकार नहीं रह जाएगा।

6. जानने का अर्थ होता है, कार्य करने की जिम्मेदारी को निभाना और कार्य करने का अर्थ होता है, समाज को फिर से कोई आकार देने (reshape) के कार्य में लग जाना। बुद्धिजीवी की भी एक वैज्ञानिक होने के नाते अपने ज्ञान को कार्यरूप (action) में परिणित करने की जिम्मेदारी होती है। अतः एक ऐसा कार्य-विज्ञान (Action Science) विकसित करना होगा जो आदर्शों के विषय में समाज के समकालीन संघर्षों को प्रतिविम्बित कर सके।

7. इसके फलस्वरूप बुद्धिजीवियों के व्यवसायिक संघों एवं विश्वविद्यालयों को संघर्ष करना पड़ेगा और इससे व्यवसायाओं का आवश्यक रूप से राजनीतिकरण हो जाएगा और यह सर्वथा वांछनीय ही होगा।

## व्यवहारवाद और उत्तर-व्यवहारवाद में अंतर (Differences Between Behaviouralism and Post-Behaviouralism)

यद्यपि उत्तर-व्यवहारवाद को व्यवहारवाद का अगला चरण और इसका सुधरा हुआ रूप कहा गया है, फिर भी इन दोनों दृष्टिकोणों अथवा उपागमों में व्यापक अंतर है। इनके मध्य के अंतर को हम निम्नलिखित प्रकार से अभिव्यत कर सकते हैं-

**1. व्यवहारवाद तथ्यों की तुलना में प्रविधियों, जब कि उत्तर-व्यवहारवाद प्रविधियों की तुलना में तथ्यों पर बल देता है। (Behaviouralism prefers techniques to facts whereas Post-Behaviouralism prefers facts to techniques)**-व्यवहारवाद एवं उत्तर-व्यवहारवाद में एक प्रमुख अंतर यह है कि व्यवहारवादी अपने विश्लेषण में तथ्यों के स्थान पर प्रविधियों पर बल देते हैं, जब कि प्रमुख उत्तर-व्यवहारवादी विद्वान् डेविड ईस्टन भी यह मानते हैं कि उत्तर-व्यवहारवाद में प्रविधियों की अपेक्षा अध्ययन-विषय अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। व्यवहारवादी इस बात पर बल देते हैं कि अस्पष्ट होने की अपेक्षा गलत होना अच्छा है, जब कि उत्तर-व्यवहारवादी इसे संशोधित करते हुए कहते हैं अप्रासांगिक होने की अपेक्षा अस्पष्ट होना ही अच्छा है। अन्य शब्दों में, उत्तर-व्यवहारवाद ऐसे राजनीतिक अध्ययन पर बल देता है जिसका सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की समयाओं से कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य हो।

**2. व्यवहारवाद मूल्यों की पूर्ण उपेक्षा करता है, जब कि उत्तर-व्यवहारवाद मूल्यों को पुनः स्थापित करता है।** (Behaviouralism totally neglects values whereas Post-Behaviouralism re-re-establishes values)-व्यवहारवादी अध्ययन की प्रकृति वैज्ञानिक है। इसीलिए यह मूल्य-रहित (value-free) अध्ययन पर इतना अधिक बल देता है कि इसमें मूल्यों का कोई स्थान ही नहीं रह जाता है, इसके विपरीत उत्तर-व्यवहारवादी अध्ययन में इन मूल्यों को फिर से स्थापित किया गया है। जिन मूल्यों की उपेक्षा व्यवहारवाद ने की है, उन्हें उत्तर-व्यवहारवाद पुनः स्थापित करता है।

**3. व्यवहारवाद ज्ञान की खोज में लिप्त है, जब कि उत्तर-व्यवहारवाद समस्याओं के समाधान पर बल देता है।** (Behaviouralism is engaged in search of knowledge whereas Post-Behaviouralism lays emphasis on the solution of problems)-व्यवहारवाद इस मान्यता पर आधारित है कि एक शोध-कर्ता की स्वयं को सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं से सर्वथा पृथक् रखना चाहिए और उस 'क्या होना चाहिए' पर नहीं बल्कि 'क्या है' पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखना चाहिए। इसका परिणाम यह हुआ कि व्यवहारवादी विद्वान् अत्यधिक वैज्ञानिक विश्लेषणों के चक्कर में पड़ करके सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं से दूर निकल जाते हैं। इसके विपरीत, उत्तर-व्यवहारवादी विद्वान् सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। व्यवहारवाद के इस दोष पर टिप्पणी करते हुए एस. पी. वर्मा कहते हैं, "अगर राजनीति शास्त्र का दायित्व मानव समाज की वास्तविक समस्याओं का हल निकालना नहीं है, तब राजनीति शास्त्र की मानव समाज के लिए उपयोगिता ही क्या होगी।"

**4. व्यवहारवाद यथा-स्थिति को बनाए रखना चाहता है जब कि उत्तर-व्यवहारवाद परिवर्तन पर बल देता है (Behaviouralism maintains status-quo whereas Post-Behaviouralism lays emphasis on social changes)** - व्यवहारवादी अध्ययन मौजूदा तथ्यों के विश्लेषण पर बल देता है और इस विश्लेषण के द्वारा वर्तमान व्यवस्था में सुधार के लिए कोई सुझाव प्रस्तुत नहीं करता है, क्योंकि 'क्या होना चाहिए' से इसका कोई वास्ता ही नहीं होता है। यही कारण है कि व्यवहारवाद यथा-स्थितिवादी (status-quotist) बन गया था क्योंकि यह मौजूदा व्यवस्था को बनाए रखने पर बल देता था, न कि इसमें सुधार लाने पर। इसके विपरीत, उत्तर-व्यवहारवाद इस बात पर बल देता है कि एक अध्ययन-कर्ता को सामाजिक स्थायित्व (social preservation) पर नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन पर बल देना चाहिए। यह दृष्टिकोण इस बात का पक्षधर है कि राजनीति वैज्ञानिकों को सामाजिक परिवर्तन लाने की दिशा में कार्य करना चाहिए।

**5. व्यवहारवाद वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग पर बल देता है जब कि उत्तर-व्यवहारवाद लक्ष्य-प्राप्ति पर बल देता है** (Behaviouralism lays emphasis on the use of scientific techniques whereas Post-Behaviouralism lays emphasis on the achievement of goals) - व्यवहारवादी विद्वानों ने वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग एवं विज्ञानवाद पर इतना अधिक बल दिया है कि इसके फलस्वरूप ये मात्र तकनीशियन और यांत्रिक बनकर रह गए हैं, जब कि उत्तर-व्यवहारवादी विद्वानों के अध्ययन केवल ज्ञान-प्राप्ति पर ही समाप्त होकर नहीं रह जाते हैं, बल्कि वे यह दायित्व भी स्वीकार करते हैं कि उन्हें '**सभ्यता के मानवीय मूल्यों**' की रक्षा करनी चाहिए। ये कहते हैं कि राजनीति वैज्ञानिक भी बुद्धिजीवी होते हैं और इस नाते इन्हें अपने इस दायित्व के प्रति सचेत रहना चाहिए।

**6. व्यवहारवाद चिन्तोन्मुखी ज्ञान पर बल देता है, जब कि उत्तर-व्यवहारवाद क्रियान्मुखी ज्ञान पर बल देता है।** (Behaviouralism emphasises on contemptative-knowledge whereas Post-Behaviouralism

emphasises on action-oriented knowledge) - व्यवहारवाद और उत्तर व्यवहारवाद में एक अंतर यह भी है कि व्यवहारवाद चिन्तोन्मुखी ज्ञान पर बल देता है अर्थात् व्यवहारवादी विद्वान् केवल केवल ज्ञान प्रापत करना ही अपना लक्ष्य मानते हैं, जब कि उत्तर-व्यवहारवाद क्रियान्मुखी ज्ञान पर बल देता है। ये इस बात पर बल देते हैं कि अध्ययनकर्ता द्वारा प्राप्त ज्ञान का उपयोग समाज के पुनर्निमाण के लिए किया जाना चाहिए। उत्तर-व्यवहारवाद की इस विशेषता को स्पष्ट करते हुए ईस्टन ने लिखा है, "जानने का अर्थ है कार्य करने की जिम्मेदारी को उठाना और कार्य करने का अर्थ है समाज के पुनर्निर्माण में व्यस्त रहना।" स्पष्ट है कि व्यवहारवाद के विपरीत उत्तर-व्यवहारवाद चिन्तनोन्मुखी ज्ञान के स्थान पर क्रियान्नोमुखी ज्ञान पर बल देता है।

**7. व्यवहारवाद सैद्धांतिकता पर बल देता है, जब कि उत्तर-व्यवहारवाद व्यवहारिकता पर बल देता है। (Behaviouralism** lays emphasis on theory whereas Post-Behaviouralism lays emphasis on action) - व्यवहारवादी विद्वानों ने स्वयं को सिद्धांत-निर्माण के कार्य तक ही सीमित रखा है और व्यावहारिकता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके विपरीत, उत्तर-व्यवहारवादी विद्वान् व्यवहारिकता पर बल देते हुए कहते हैं कि अध्ययन एवं शोध-कार्य सैद्धांतिकता को नहीं, बल्कि व्यावहारिकता को ध्यान में रखकर ही किए जाने चाहिए।

**8. व्यवहारवाद अध्ययनकर्ता की तटस्थता पर बल देता है जब कि उत्तर-व्यवहारवाद अध्ययनकर्ता की सामाजिक भूमिका को स्वीकार करता है** (Behaviouralism lays emphasis on the neutrality of researcher whereas Post-Behaviouralism accepts the social role of researcher)-व्यवहारवादी विद्वानों की मान्यता है कि अध्ययन-कर्ता को तटस्थता से बचे रहना चाहिए अर्थात् उसको सामाजिक कार्यों से स्वयं को नहीं जोड़ना चाहिए और न ही उसे किसी प्रकार की कोई भूमिका स्वीकार करनी चाहिए। इसके विपरीत, उत्तर-व्यवहारवादियों की धारणा है कि अध्ययन-कर्ता को तटस्थ न रहकर समाज में सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करना चाहिए। ये इस बात पर बल देते हैं कि यदि समाज में कोई संकट उत्पन्न होता है, तो ऐसी स्थिति अध्ययनकर्ता को एक मूक दर्शक नहीं बने रहना चाहिए, बल्कि इसको दूर करने में अपना योगदान देना चाहिए।

## Unit-II

### 4. राजनीतिक सिद्धांत के पतन के वाद विवाद पर लेख लिखिए।

**अथवा**

### राजनीतिक सिद्धान्त के पतन के विषय में कॉब्बन और डेविड ईस्टन के विचारों की समीक्षा कीजिए। (Examine the veiws of Cobbon and David Easton about the decline of political theory.)

**उत्तर**- बीसवीं शताब्दी के मध्य से, विशेषकर द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् राजनीतिक सिद्धान्त के अस्तित्त्व एवं स्तर के विषय में राजनीतिशास्त्रियों के बीच एक गम्भीर वाद-विवाद जारी है। कुछ विद्वानों का मत है कि राजनीतिक सिद्धान्त का पतन हो चुका है। बल्कि कुछ तो यहाँ तक भी कह चुके हैं कि राजनीतिक सिद्धान्त की मृत्यु हो चुकी है। इस मत के समर्थक हैं-काब्बन, डेविड ईस्टन, डाल्टन तथा सालसेट। इन लोगों का कहना है कि पिछले काफी वर्षों से कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण राजनीति सिद्धान्तशास्त्री नहीं हुआ है जिसने किसी नवीन राजनीतिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया हो। किन्तु इसके विपरीत, कुछ दूसरे विद्वानों का मत है कि राजनीतिक चिन्तन इन दिनों अपने विकास की चरम सीमा पर है और वर्तमान समय में यह सामाजिक-राजनीतिक जीवन में उल्लेखनीय महत्त्व प्राप्त कर चुका है। इस मत के समर्थकों में इशिया बर्लिन, लियो स्ट्रॉस, थर्सबाई तथा गूल्ड की विशेष रूप से गिनती की जाती है।

### राजनीतिक सिद्धान्त के बारे में कॉब्बन के विचार (Views of Cobbon about the Decline of Political Theory)

जैसा कि हम कह चुके हैं कि कॉब्बन उन विद्वानों में से एक है, जो यह मानते हैं कि आधुनिक समय में राजनीतिक सिद्धान्त का पतन हो चुका है। कॉब्बन ने अपने शोध-लेख (Research Article) '**नीतिशास्त्र तथा राजनीतिक सिद्धान्त का पतन**'

**(Ethics and Decline of Political Theory)** में जो 'राजनीति विज्ञान त्रैमासिक' (Political Science Quarterly) नामक शोध-पत्रिका (Research Journal) के 3 सितम्बर, 1953 के अंक में प्रकाशित हुआ, राजनीतिक सिद्धान्त के पतन के निम्नलिखित **तीन कारणों** का उल्लेख किया है-

**1. सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल नहीं (Not Co**mpatible with Social Conditions)-कॉब्बन का विचार है कि सामाजिक जीवन में परिवर्तन अवश्यम्भावी होता है और इस परिवर्तन के साथ-साथ राजनीतिक सिद्धान्त में परिवर्तन होना भी आवश्यक है। वह इस बात पर बल देते हुए कहता है कि राजनीतिक सिद्धान्त (चिन्तन) का अस्तित्त्व और महत्त्व इस बात पर निर्भर करता है कि यह बदलती हुई सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का निरूपण एवं चित्रण कर सके। अगर कोई सिद्धान्त सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का निरूपण एवं चित्रण करने में असमर्थ रहता है, तो स्वाभाविक रूप से उसकी मृत्यु हो जाती है और मरा हुआ सिद्धान्त केवल एक दैनिक, बौद्धिक अभ्यास बनकर रह जाता है।

इसी विषय में कॉब्बन एक और विचार भी व्यक्त करते हैं। उनके मतानुसार आज के राजनीतिक सिद्धान्त में मूल्यों को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता है। आज के राजनीतिक चिन्तकों ने व्यवहारिक राजनीति की समस्या और तथ्यों से मुँह मोड़ लिया है। वर्तमान राजनीतिक सिद्धान्त 'चाहिए' (ought) के स्थान पर 'है' (is) पर बल देता है, इसीलिए यह सामाजिक-राजनीतिक जीवन से कट चुका है। यही कारण है कि आज राजनीतिक चिन्तन का पतन हो गया है।

**2. राजनीतिक चिन्तन (सिद्धान्त) में आन्तरिक कमियाँ (Internal Weakness in Political Thought)**-कॉब्बन का मत है कि राजनीतिक चिन्तन के पतन का एक अन्य कारण है, इसमें आन्तरिक कमियों का होना। उसके मतानुसार राजनीतिक चिन्तन इतिहास और विज्ञान का शिकार हो गया है। इन दोनों के प्रभाव के कारण यह नैतिक दृष्टि से नपुंसक-सा हो गया है। इसी कारणवश वर्तमान राजनीतिक सिद्धान्त राजनीतिक जीवन के विषय में अपने मूल्य स्पष्ट नहीं कर सका है। एक इतिहासकार विचारों को अतीत के सन्दर्भ में ही देखता है। यह यही देखता है कि किसी राजनीतिक संस्था में जीवित रहने की कितनी शक्ति है। इसी तरह वैज्ञानिक यह देखता है कि राजनीतिक घटनाएँ क्यों और कैसे घटित होती हैं। यह घटनाओं की कार्य-कारण के सम्बन्ध के आधार पर व्याख्या करता है अर्थात् वह इस बात का पता लगाता है कि कौन से कारण किस कार्य को जन्म देते हैं। इस दृष्टि से एक वैज्ञानिक केवल तथ्यों का ही वर्णन करता है; नैतिक निर्णय नहीं देता है। कॉब्बन का मत है कि इतिहास और विज्ञान ने आज के राजनीतिक चिन्तन को ग्रसित कर लिया है और इसीलिए ये इसके पतन के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेवार हैं। यह कहता है कि राजनीतिक चिन्तन इन दोनों से अलग बहुत कुछ है अतः उद्देश्य के विचार (idea of purpose) को राजनीतिक सिद्धान्त (चिन्तन) में प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिए, किन्तु वर्तमान राजनीतिक चिन्तन में इसका अभाव है। वह कहता है, "राजनीतिक चिन्तन में उद्देश्य का विचार फिर से लागू होना चाहिए तवा राजनीति में नैतिक मूल्यों का लगातार रुपांतरण होना चाहिए।"

**3. व्यावहारिक राजनीतिक जीवन से अलगाव** (Separation from Practical Political Life)-कॉब्बन का मत है कि वर्तमान राजनीतिक सिद्धान्त व्यावहारिक राजनीतिक जीवन से प्रायः अलग-थलग है और यही बात इसके पतन का एक प्रमुख कारण है। उसके मतानुसार प्राचीन राजनीतिक चिन्तक या तो किसी राजनीति दल के सदस्य होते थे या फिर ऐसे राजनीतिक कार्यकर्ता, जिनकी अपनी गतिविधियाँ किसी राजनीतिक सिद्धान्त पर आधारित होती थी। किन्तु आज का विचारक न तो अपने सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप से क्रियान्वित करने में रुचि लेता है और न ही वह सिद्धान्तों के झमेले में पड़ता है। अन्त में कॉब्बन यह भी कहते हैं कि आज के राजनीतिक सिद्धान्त में उद्देश्यहीनता मौजूद है। यह एक ऐसे जहाज के समान है जिसके चालक को अपने गन्तव्य का ही पता नहीं है। कॉब्बन के शब्दों में, "आज के राजनीतिक सिद्धान्त में दिशा-निर्देशन तया उद्देश्य ही भावना का अभाव है और यही साधारण व्यक्ति के लिए साधारण शब्दों में, इसके पतन का कारण है।"

## राजनीतिक सिद्धान्त के पतन के बारे में डेविड ईस्टन के विचार (Views of David Easton about the Decline of Political Theory)

डेविड ईस्टन ने राजनीतिक सिद्धान्त के पतन के बारे में विचार अपने एक शोध-लेख, 'आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त का पतन' (The Decline of Modern Political Theory) में प्रकट किए हैं। अपनी दो अन्य पुस्तकों 'The Political System : An equiry into the state of Political Science' तथा 'A Framework for Political Analysis' में भी उसने इस विषय में विस्तारपूर्वक लिखा है। ईस्टन ने राजनीतिक सिद्धान्त के पतन के लिए जिन कारणों का उल्लेख किया है, उनका वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है-

**1. राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्रियों का इतिहासवाद** (Historicism of the Political Theorists)-ईस्टन का कहना है कि सेबाइन, डनिंग, मैकलवेन, लिण्डसे तथा एलेन आदि सभी राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्रियों ने अपना ध्यान अतीत के अध्ययन पर केन्द्रित करने की भूल की है। वह कहता है कि मैकलवेन जैसे संस्थावादी, एलेन जैसे अन्तक्रियावादी तथा डनिंग एवं सेवाइन जैसे भौतिकवादी राजनीतिक विचारों तथा संस्थाओं के इतिहास की खोज में लगे रहे। ये वर्तमान पर अतीत के प्रभाव का विश्लेषण करने में सर्वथा असफल ही रहे। वस्तुतः इनका मुख्य उद्देश्य उन ऐतिहासिक परिस्थितियों को समझना ही रहा, जिन्होंने राजनीतिक विचारों को जन्म दिया था। इस प्रकार से ईस्टन का मत है कि इन सिद्धान्तशास्त्रियों ने राजनीतिक वैज्ञानिक के स्थान पर इतिहास-वेत्ताओं के रूप में ही कार्य किया और इनके ऐतिहासिक दृष्टिकोण ने मूल सिद्धान्त को बने रहने नहीं दिया।

**2. नैतिक सापेक्षवाद (Moral Relativism) -** ईस्टन का मत है कि राजनीतिक सिद्धान्त के पत्तन का एक अन्य कारण है, नैतिक सापेक्षवाद जिसका अर्थ है तथ्यों को मूल्यों से पृथक् रखना। उसका विचार है कि यह नैतिक सापेक्षवाद ह्यूम के लेखों में उभरा है तथा मैक्स वेबर की रचनाओं में इसने स्पष्ट एवं ठोस रूप धारण किया है। किसी राजनीतिक विचारक के लिए अपने समय की परिस्थितियों के प्रति तटस्थ बने रहना कठिन होता है। यदि वह स्वयं को इनसे अलग रखता है तथा अपने समय की सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयत्न नहीं करता, तो वह अपने उत्तरदायित्व से दूर भागता है। इसी के साथ, यह भी एक वास्तविकता है कि एक राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्री न केवल मनुष्यों का विश्लेषण करता है, बल्कि काल, देश और परिस्थितियों के अनुसार नवीन मूल्यों की खोज करता है। वर्तमान समय में मूल्यों के प्रति निरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाने के कारण ही राजनीतिक सिद्धान्त पतन की ओर तेजी से अग्रसर है।

**3. तथ्यों पर अत्यधिक निर्भरता (To Much Dependence on Facts)** - ईस्टन के मतानुसार आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के पतन का एक अन्य कारण है, तथ्यों पर अत्यधिक निर्भरता। वे कहते हैं कि 20वीं शताब्दी में लार्ड ब्राइस जैसे विद्वानों ने तथ्यों पर अत्यधिक बल दिया है। ब्राइस ने विभिन्न देशों की लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करने के लिए तथ्यों का संग्रह किया। इसके बाद ब्राइस ने आनुभविक अध्ययन-पद्धति द्वारा इनका तुलनात्मक अध्ययन किया। किन्तु तथ्यों पर उसकी अत्यधिक निर्भरता के कारण राजनीतिक सिद्धान्त के निर्माण का उद्देश्य गौण बन गया। किसी भी अध्ययन में तथ्यों के स्थान को स्पष्ट करते हुए **ईस्टन ने लिखा** है, "तथ्यों के अभाव में सिद्धान्त, बिना सुदृढ़ आधार वाले इच्छा-चालित जहाज की तरह हो सकता है; किन्तु जब तथ्य-संग्रह में लगे रहकर तथ्यों को उनके सैद्धान्तिक महत्त्व से देखने के प्रयास न किए जाएं, तो तथ्यात्मक अनुसंधान का अन्तिम मूल्य स्वयं ही समाप्त हो सकता है।"

**4. विज्ञान तथा सिद्धान्त में सही ताल-मेल का अभाव (**No Proper Adjustment Between Science and Theory) - ईस्टन राजनीतिक सिद्धान्त के पतन के लिए विज्ञान तथा राजनीतिक सिद्धान्त के गलत ताल-मेल की प्रवृत्ति को भी जिम्मेदार ठहराता है। उसका कहना है कि राजनीतिक शोध से वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाना अलग बात है, किन्तु ऐसे शोध से प्राप्त होने वाले परिणामों से किसी राजनीतिक सिद्धान्त का निर्माण करना उचित नहीं है। जो राजनीति शास्त्री स्वयं को राजनीतिक वैज्ञानिक बताते हैं और वैज्ञानिक होने के लिए तथ्यों का संग्रह करते हैं और इन तथ्यों के सन्दर्भ में राजनीतिक संगठनों तथा प्रक्रियाओं में सुधार लाने के लिए सुझाव देते हैं; उनके इस प्रयास को वैज्ञानिक तो कहा जा सकता है, किन्तु इससे किसी सिद्धान्त के निर्माण की सम्भावना कम ही होती है। इस तरह ईस्टन का विचार है कि राजनीतिशास्त्र के अध्ययन की वैज्ञानिक पद्धति महत्त्वपूर्ण तो है, किन्तु यह सिद्धान्त-निर्माण में सहायक नहीं होती है। वह कहता है कि आदर्शवादियों एवं व्यवहारवादियों के बाद मूल्य-तथ्य (value-fact) विवाद में बहुत समय व्यर्थ में ही नष्ट हुआ, क्योंकि इससे सिद्धान्त के निर्माण में कोई प्रगति नहीं हुई।

**5. नए राजनीतिक संश्लेषण को विकसित करने में असफलता (F**ailure to Develop a New Political Synthesis) - ईस्टन के मतानुसार राजनीतिक सिद्धान्त के पतन का एक कारण यह है कि अगुनिक राजनीतिक विचारक पुराने विचारों पर निर्भर होने के कारण नए राजनीतिक संश्लेषण विकसित करने में सफल नहीं रहे हैं। ये पुराने मूल्यों के अन्वेषण तथा इन्हें उस वातावरण से, जिसने इन्हें पैदा किया था, मिलाने में व्यस्त रहे। इस तरह इन्होंने अपने सिद्धान्त के परंम्परागत कार्य-मूल्यों के विषयों (content) के पुनर्निर्माण को त्याग दिया, जब कि अर्थशास्त्री एवं समाजशास्त्री अपनी धारणाओं, दृष्टिकोणों एवं सिद्धान्तों के निर्माण एवं पुनर्निर्माण के कार्य में लगे रहे।

**ईस्टन** आगे लिखते हैं कि प्रत्येक राजनीतिक सिद्धान्त चार तत्त्वों-मूल्य, तथ्य, कार्य-करण प्रभाव और व्यवहारिक पहलू (applied aspect) से मिलकर बनता है। उसके अनुसार आधुनिक राजनीतिक चिन्तन में इन चार तत्त्वों का अभाव है, क्योंकि ये इतिहास पर बहुत अधिक निर्भर हैं। तथ्य तथा व्यवहार का तो इसमें नाम तक नहीं है। स्पष्ट है कि इन तत्त्वों का अभाव ही आधुनिक राजनीतिक चिन्तन के पतन के लिए जिम्मेदार है।

अपने उक्त शोध-प्रबन्ध के अन्त में ईस्टन ने इन समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया है। उसके मतानुसार वर्तमान राजनीतिक सिद्धान्त के पुनर्निर्माण के लिए दो बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए-

1. राजनीतिक चिन्तकों को पुराने विचारों का विश्लेषण करके नए राजनीतिक मूल्यों का निर्धारण करना चाहिए, तथा

2. शोध के लिए नई वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाना चाहिए।

**दूसरा पक्ष (Other Veiw-point)-** अनेक राजनीतिक चिन्तक आधुनिक समय में राजनीतिक सिद्धान्त में आई कमियों को तो स्वीकार करते हैं, किन्तु वे यह बात स्वीकर नहीं करते हैं कि इनके कारण राजनीतिक सिद्धान्त का पतन हो गया है। ये कहते हैं कि ये जीवित हैं क्योंकि इनका विकास भी हुआ है और इनमें परिवर्तन भी हुआ है। इस बारे में **आइजिआ बर्लिन (Isaih** Berlin) अपने विचार अपने एक शोध लेख, '**क्या राजनीतिक सिद्धान्त अभी भी जीवित है?' (Deos Political Theory Still Exists?)** में अभिव्यक्त किए हैं। बर्लिन ईस्टन और कॉब्बन से बिल्कुल भी सहमत नहीं है। उसका कहना है कि राजनीतिक सिद्धान्त की मृत्यु नहीं हुई है, बल्कि वह आज भी वैसे ही जीवित है, जैसे वह पहले कभी जीवित था। बर्लिन लियो स्ट्रॉस की तरह व्यवहारवादियों और उत्तर-व्यवहारवादियों का घोर विरोध करता है। वह इस बात पर बल देता है कि आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त मूल्यों से ओत-प्रोत है, इसीलिए इसके मूल्य-निरपेक्ष होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता है। वह यह भी कहता है कि राजनीति के अध्ययन की प्राकृतिक विज्ञानों की भांति न तो वैज्ञानिक बनाया जा सकता है और न ही बनाया जाना चाहिए। अपने इस लेख में वह उन सभी विद्वानों के तर्कों का खण्डन करता है, जो मानते हैं कि आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त का पतन हो चुका है।

निःसन्देह 20वीं शताब्दी में राजनीतिक सिद्धान्त **दो धाराओं-परम्परावाद और व्यवहारवाद** में विकसित हुआ था, किन्तु उत्तर-व्यवहारवाद ने इन दोनों के मध्य की दूरी को कम कर दिया है। अब तथ्य बनाम मूल्य का स्थान तथ्य और मूल्य के सामंजस्य और विज्ञान बनाम परम्परा का स्थान, विज्ञान और परम्परा के सामंजस्य ने ले लिया है। आधुनिक समय में नवीन राजनीतिक सिद्धान्तों की रचना हुई है। नव-मार्क्सवाद, राष्ट्रवाद, इतिहासवाद और गाँधीवाद कुछ ऐसे ही नवीन सिद्धान्त हैं। वर्तमान समय मे जो विद्वान व्यवहारवादी से उत्तर-व्यवहारवादी बने हैं, उन्होंने भी राजनीतिक सिद्धान्त के विकास में योगदान दिया है।

**निष्कर्ष (Conclusion)** - निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त का न तो पतन हुआ है और न ही मृत्यु। वर्तमान समय में भी ऐसे अनेक विचारक हुए हैं जिन्होंने समाज के पुनर्निर्माण में बहुत अधिक रुचि ली है। इन विद्धानों में सात्रे, मारक्यूज , हन्ना आईट, माओ, चे गुवेरा तथा फेनन के नामों की गिनती की जा सकती है। ये सभी राजनीतिक चिन्तक सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितयों के प्रति पूर्ण जागरूक रहे हैं।

## 5. विचारधारा के अंत पर निबंध लिखिए।

उत्तर: विचारधारा के अंत पर चर्चा करने से पहले विचारधारा का अर्थ जान लेना आवश्यक है —

**विचारधारा का अर्थ:**

**वी. एल. एलेन** के शब्दों में, "विचारधारा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा विचार, मूल्य और व्यवहार को प्रभावित करते हैं।"

**जार्ज बी. डी. हज्जर तथा टी. एच. स्टीवसन** के अनुसार, "एक राजनीतिक विचारधारा किसी देश, राष्ट्रीयता, राजनीतिक दल या किसी अन्य राजनीतिक समूह द्वारा धारण किए जाने वाले विश्वास या कार्यक्रम का एक संग्रह होती है, जिसका लक्ष्य कोई विशिष्ठ राजनीतिक साध्य होता है तथा जो सामाजिक व आर्थिक घटनाओं और संस्थाओं की व्याख्या इसी साध्य के अनुसार करती है।"

**आर्थर स्कलेसिंगर जूनियर** के शब्दों में, "मेरे विचार में विचारधारा व्यवस्थित एवं कठोर सिद्धान्तों का एक ढाँचा है जिसके द्वारा लोग विश्व को समझने का प्रयास करते हैं और उसे संरक्षित या परिवर्तित करने का प्रयास करते हैं।"

अतः हम कह सकते हैं कि **विचारधारा** विचारों एवं सिद्धान्तों का एक ऐसा समूह होती है जो एक ओर व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है, तो दूसरी ओर किसी विशिष्ठ राजनीतिक व्यवस्था को उचित ठहराने का प्रयास करती है।

## विचारधारा के अंत का सिद्धांत

विचारधारा के अन्त के सिद्धान्त का प्रतिपादन **अमेरिकी विद्वान डेनियल बेल तथा राबर्ट ईस्टन** लेन ने किया है। ये विद्वान अपने-अपने ढंग से इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हैं।

अमेरिकी विद्वान डेनियल बेल के मतानुसार विचारधारा विचारों की एक ऐसी व्यवस्था होती है जो सामाजिक मूल्यों को सुदृढ़ करती है और सभी समाजों को किसी न किसी विचारधारा की आवश्यकता होती है। इसीलिए सभी विचारधाराएँ समान रूप से सफल रही हैं। किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पश्चिमी राष्ट्रों में जिस तरीके से परिवर्तन हुए, उन्हें देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अब किसी विचारधारा की आवश्यकता ही नहीं रह गई है। वह इस बात पर जोर देता है कि कार्ल मार्क्स ने जिस साम्यवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया था, उसकी मृत्यु के बाद इस विचारधारा के परम्परागत स्वरूप में विभिन्न देशों द्वारा अपनी परिस्थितियों के अनुसार जो परिवर्तन किये गये, उनके परिणामस्वरूप इसके विभिन्न रूप (forms) उभर आए । आज यदि मार्क्स जीवित होता तो वह साम्यवाद के विभिन्न रूपों को देखकर स्वयं भी भ्रमित हो जाता और उसके लिए यह निश्चित करना कठिन हो जाता कि रूस को साम्यवाद असली है, या चीन का साम्यवाद, यूगोस्लाविया का या क्यूबा का, या फिर यूरो-साम्यवाद असली है। इसी तरह पूंजीवादी विचारधारा भी अपना असली स्वरूप गंवा चुकी है और इसीलिए अब पूंजीवादी देशों में भेद कर पाना कठिन हो गया है। सन् 1960 में बेल ने लिखा था, “आज ये विचारधाराएँ समाप्त हो चुकी हैं। ... पुरानी विचारधाराओं ने अपनी सच्चाई और समझाने-बुझाने की अपनी शक्तियाँ खो दी हैं।"

वह कहता है राजनीतिक स्थिरता की समस्या तो अब लगभग हल ही हो गई है। जनता अपनी राजनीतिक संस्थाओं में आस्था रखती है और कल्याणकारी राज्य के इस युग में अब उसे किसी बात का डर नहीं है। अब केवल आर्थिक विकास करना ही बाकी रह गया है और इस उद्देश्य को राष्ट्र अपनी राजनीतिक व्यवस्था को कायम रखते हुए ही पूरा करना चाहते हैं। वह कहता है कि इसी कारणवश अब अमेरिका की रिपब्लिकन पार्टी और डेमोक्रेटिक पार्टी में अधिक वैचारिक मतभेद नहीं रह गया है। इससे तो यही सिद्ध होता है कि विचारधारा "जो कभी कार्यवाही का मुख्य मार्ग होती थी, अब समाप्त हो गई है।"

राबर्ट **ईस्टन लेन** भी अमेरिकी विचारक है। वह विचारधारा के सिद्धान्त की व्याख्या अपने ढंग से करता है। वह लेनिन के तर्कों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि वर्तमान समय में श्रमिक वर्ग अनेक समाजवादी विचारधाराओं में बंट चुका है, जिसके कारण श्रमिक वर्ग की कोई एक ऐसी निश्चित विचारधारा नहीं रह गई जैसा कि मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाजवाद की थी। आज अलग-अलग राष्ट्रों में अलग-अलग प्रकार के समाजवादी दल पाए जाते हैं और ये सभी श्रमिक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह कहता है कि इस स्थिति के कारण बुर्जुआ विचारधारा शक्तिशाली हुई है। उसके अनुसार पिछले कुछ वर्षों में स्थिति इस तरह बदली है कि समाजवादी विचारधारा वाले देशों में पूंजीवाद का प्रारम्भ हुआ है। इस प्रकार आज कोई ऐसी स्वतन्त्र विचारधारा नहीं रह गई है, जो श्रमिकों ने स्वयं बनायी हो।

इन अमेरिकी विद्वानों का उद्देश्य 'लोकतन्त्र के युग' में विचारधारा की अवधारणा को समाजवाद की छड़ी से मारना है। इन विद्वानों का तर्क है कि लोकतन्त्र सहमति पर आधारित ऐसी व्यवस्था है जिसमें संघर्षात्मक राजनीति अथवा वर्ग-संघर्ष का कोई स्थान नहीं है। ये कहते हैं कि जैसे आर्थिक विषमताएँ कम होती जा रही हैं, वैसे-वैसे मतभेद या वर्ग-संघर्ष भी समाप्त होता जा रहा है अर्थात् असन्तुष्टि को जन्म देने वाले कारण समाप्त होते जा रहे हैं और एक ऐसी व्यवस्था कायम हो गई है जिसमें समाज में जो चीजें हैं, उन्हें व्यक्ति ने उसी रूप में स्वीकार कर लिया है।

**विचारधारा के अन्त के वाद-विवाद का प्रारम्भ(Begining of the Debate on the End of Ideology)**

विचारधारा के अन्त पर वाद-विवाद का प्रारम्भ **1950 में आयोजित सांस्कृतिक स्वतन्त्रता के लिए बर्लिन कांग्रेस (Berlin** Congress for Cultural Freedom) के साथ हुआ। सांस्कृतिक स्वतन्त्रता के लिए कांग्रेस (Congress for Cultural Freedom) अमेरिका द्वारा स्थापित एक प्रचार करने वाली संस्था है जिसमें अधिकतर पश्चिमी देशों के बुद्धिजीवी शामिल हैं। इसकी पहली बैठक 1950 में बर्लिन शहर में हुई। इसमें डेनियल बेल, एस. एम. लिपसेट, रेमण्ड एरॉन, एडवर्ड शिल्स, आर्थर स्वेल सिंगार, जे.के. गाल्ब्रेय तथा अन्य अनेक विद्वानों ने भाग लिया। इस कांग्रेस में सुझाए गए कई विचारों में से एक था- विचारधारा का अन्त ।

तत्पश्चात् विचारधारा के अन्त की बात, सन् 1955 में मिलान में आयोजित सांस्कृतिक स्वतन्त्रता की कांग्रेस (सम्मेलन) में हुई। इस सम्मेलन में विभिन्न देशों के लगभग 150 लेखकों, राजनीतिज्ञों, पत्रकारों और शिक्षाविदों ने भाग लिया। एडवर्ड शिल्स के शब्दों में इस सम्मेलन का उद्देश्य पश्चिम के उदारवादी और समाजवादी चिन्तन को अनावश्यक विभाजनों से रोकना था। इस सम्मेलन में सभी प्रमुख विचारधाराओं के मानने वाले विद्वान सम्मिलित हुए थे और इसीलिए ऐसा लगता था कि इसमें तीव्र वाद-विवाद और वैचारिक मतभेद उभर कर आएंगे। किन्तु इसमें ऐसा कुछ नहीं हुआ और आशा के विपरीत, इसमें वैचारिक समझौते (ideological accord) का वातावरण देखने को मिला। इस सम्मेलन में शामिल सभी विद्वानों ने इस बात पर बल दिया कि अब वह समय आ गया है जब पश्चिम के वामपन्थी और दक्षिणीपंथी समूहों को एक-दूसरे के समीप आकर अपनी आम बौद्धिक जड़ों को पहचानना चाहिए।

**रेमन्ड एरॉन** ने विचार प्रकट किया कि पिछले तीन दशकों में अति वामपंथी और अति दक्षिणपंथी विचारक धीरे-धीरे एक-दूसरे के नजदीक आ रहे हैं और अब इनमें कुछ ऐसी समानताएँ देखने को मिलती हैं जो इनमें मौजूद मतभेदों से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। वह आगे कहता है कि ब्रिटिश समाजवाद अधिनायकवाद में नहीं बदला है जिसके परिणामस्वरूप वामपंथी समाजवाद और दक्षिणीपंथी नव-उदारवाद की विचारधाराएँ कमजोर पड़ गई हैं। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वैचारिक मतभेद के युग की समाप्ति हो चुकी है, क्योंकि अतीत के व्यापक सैद्धान्तिक भेद अब अपनी सार्थकता गंवा चुके हैं। एडवर्ड शिल्स ने इस सम्मेलन में 'विचारधारा के अन्त' को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है- "पढ़ा गया प्रत्येक पेपर एक प्रकार से सिद्धान्तवाद, कट्टरतावाद और विचारधारा की प्राप्ति की आलोचना मात्र था। लगभग सभी लेखकों ने यह विचार प्रकट किया कि मानव जाति अपने लिए अपने बाग लगा और सुधार रही है; कल्पनाओं और कट्टरपन से अपने को सुरक्षित कर रही है और विचारधारावादियों और अति-उत्साहवादियों (zealots) के उत्पीड़न से स्वयं को मुक्त कर रही है।"

**रेमण्ड एरॉन** ने विचारधारा के अन्त के सिद्धान्त का प्रतिपादन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बुद्धिजीवियों की अफीम' (The Opium of Intellectuals) में किया है। उसके मतानुसार विचारधारा के अन्त से तात्पर्य है-क्रान्तिकारी भावनाओं को समाप्त होना, लोकतान्त्रिक-उदारवादी सहमति का उत्पन्न होना, रहस्यात्मक चेतना का उन्मूलन होना तथा मार्क्सवाद के प्रभाव का अधिकांश लोगों- विशेष तौर पर बुद्धिजीवियों, पर समाप्त होना। एरॉन के इस निष्कर्ष को आगे चलकर डेनियल बेल की पुस्तक 'विचारधारा का अन्त: पचास के दशक में विचारों की समाप्ति पर' (The End of Ideology: On the exhaustion of political ideas in Fifties) और एस. एम. लिपसेट की पुस्तक 'राजनीतिक मनुष्य : राजनीतिक के सामाजिक आधार' (Political Men: The social basis of politics) में समर्थन मिला। इन पुस्तकों में इन विद्वानों ने विचारधारा के अन्त के सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या की है।

डेनियल बेल एवं एस. एम. लिपसेट की धारणा है कि वामपंथ और दक्षिणपंथ को एक-दूसरे से अलग करने वाले मुद्दों एवं

समस्याओं का अब कोई महत्त्व नहीं रह गया है। आज इस तथ्य को सभी स्वीकारते हैं कि पश्चिम के लोकतान्त्रित देशों में बढ़ते राज्य-नियमन (State regulation) से मानव-स्वतन्त्रता समाप्त नहीं हो रही है। इसी तरह लोकतान्त्रिक समाजवादी देश भी अब बैंकों के अन्धाधुंध राष्ट्रीयकरण जैसे समाजवादी कार्यक्रमों पर बल नहीं देते हैं क्योंकि ये भी अब परम्परावादियों के समान राज्य की बढ़ती शक्तियों के प्रति चिन्तित हैं। यही कारण है कि विचारधारा-सम्बन्धी जो मुद्दे पहले वामपंथ और दक्षिणपंथ को एक-दूसरे से पृथक् करते थे, अब वे कम होकर राज्य-नियन्त्रण और आर्थिक नियोजन तक सीमित हो गए हैं। इसीलिए आर्थिक नीतियों के विषय में अब ब्रिटेन में श्रमिक दल और अनुदार दल की सरकारों में कोई अधिक अन्तर दिखाई नहीं देता है।

ब्रिटेन के वामपंथी विचारक रिचर्ड क्रासमेन का विचार है कि पश्चिम के समाजवादी, समाजवाद को अब एक स्वप्नलोकी सिद्धान्त मानने लगे हैं, एक ऐसा सिद्धान्त जिसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। पश्चिम के लोकतान्त्रित समाजवादी दल या श्रमिक दल अब उद्योगों के राष्ट्रीयकरण पर अधिक बल नहीं देते हैं। राष्ट्रीयकरण के इस लक्ष्य को जर्मनी, ब्रिटेन और स्कैन्डिनेविया के समाजवादी दलों ने छोड़ दिया है। इसी तरह फ्राँस और इटली के समाजवादी दल राष्ट्रीयकरण के मुद्दे को अपने चुनाव-घोषणापत्रों में तो शामिल करते हैं, किन्तु इसको लागू करने के बारे में वे गम्भीर नहीं होते हैं। इस तरह राष्ट्रीयकरण का इनका लक्ष्य केवल एक औपचारिकता मात्र बनकर रह गया है।

इस प्रकार इन विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वर्तमान समय में कोई भी विचारधारा अपने विशुद्ध रूप में नहीं रह गई है। इसीलिए आज ऐसा लगता है कि विचारधारा का अन्त हो गया है।

**आलोचना (Criticism) -** सी. राइट मिल्स और मास्कविचोव आदि अनेक विद्वानों ने विचारधारा के अन्त के सिद्धान्त की आलोचना की है। इन विद्वानों का कहना है कि 'विचारधारा के अन्त' का सिद्धान्त प्रतिपादित करने वाले विद्वान पूंजीवादी राष्ट्रों के शासकों की जरूरतों को पूरा करते है, ताकि इन राष्ट्रों में समाजवाद के प्रसार को रोका जा सके। अन्य शब्दों में, यह सिद्धान्त समाजवादी क्रान्ति से बचने का एक उपाय है। वस्तुतः यह सिद्धान्त अन्य नवीन उदारवादी सिद्धान्तों की तरह, साम्यवाद के सिद्धान्त का विकल्प प्रस्तुत करता है।

स्पष्ट है कि विचारधारा के अन्त का सिद्धान्त अमेरिकी पूंजीवादी विचारकों द्वारा मार्क्सवाद पर किया गया आक्रमण है। इसी कारण मार्क्सवादी विचारकों द्वारा इसकी कड़ी आलोचना की गई है।

## Unit-III

### 6. जॉन रॉल्स के वितरणात्मक न्याय सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

### उत्तर : जॉन रॉल्स का वितरणात्मक न्याय का सिद्धान्त (John Rawls' Theory of Distributive Justice)

जॉन रॉल्स एक ऐसा उदारवादी विचारक है जो सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में प्रचलित राज्य के उस सामाजिक अनुबन्ध अथवा संविदा सिद्धान्त (Social Contract theory) का समर्थन करता है, जिसके प्रमुख प्रतिपादक लॉक और रूसो थे। इन अनुबंधवादी या समझौतावादी विचारकों की मूल मान्यता यह थी कि राज्य की उत्पत्ति एक अनुबंध या समझौते के द्वारा हुई है, जिसके तहत जनता ने राज्य को सीमित अधिकार सौंपे और शेष अधिकार अपने ही पास रखे। जॉन लॉक तो जीवन, स्वतन्त्रता एवं सम्पत्ति के अधिकारों को प्राकृतिक अधिकारों की श्रेणी में रखता है और इसी नाते इन पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार राज्य को नहीं सौंपता है। इन अधिकारों में भी वह सर्वाधिक महत्त्व सम्पत्ति के अधिकार को देता है, जिसके अन्तर्गत खुली प्रतियोगिता तथा मुक्त व्यापार और अनुबंध की स्वतंत्रता शामिल है।

जिस समय जॉन राल्स की पुस्तक 'न्याय का सिद्धान्त' (A Theory of Justice) प्रकाशित हुई, उस समय उदारवादी-पूंजीवादी व्यवस्था बड़े संकट के दौर से गुजर रही थी। अमेरिका में अश्वेत लोग अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत थे। इन्हीं दिनों अमेरिका का वियतनाम के साथ युद्ध चल रहा था। वियतनाम के विरुद्ध अमेरिका की लड़ाई ने उदारवादियों को झकझोर

दिया था। इसी समय अनेक विकासशील देशों में उदारवादी लोकतन्त्र लड़खड़ा रहा था और इन देशों में बेरोजगारी, मुद्रास्फीति एवं जन-असंतोष ने भयंकर रूप धारण कर लिया था और एक बार ऐसा लगने लगा था कि यह जन असंतोष लोकतन्त्र और उदारवाद दोनों को ही ले डूबेगा। ऐसी स्थिति में इन देशों में या तो सैनिक तानाशाही कायम हो जायेगी या फिर यहाँ साम्यवादी शासन स्थापित हो जायेगा। इस समय एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठाया जा रहा था कि क्या उदारवाद बच पायेगा। ऐसे में लोकतंत्र और उदारवाद की रक्षा हेतु एक ऐसे सिद्धान्त की आवश्यकता थी, जो लोकतन्त्र की रक्षा करने के साथ-साथ लोगों को रोजी-रोटी और दूसरी आर्थिक सुविधाएं प्रदान कर सके। इन परिस्थितियों में उदारवादी लोकतन्त्र की रक्षा करने की जिम्मेदारी जॉन रॉल्स ने ली- न्याय का एक नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित करके। जॉन राल्स के इस सिद्धान्त को वितरणात्मक न्याय का सिद्धान्त भी कहा जाता है। जॉन रॉल्स अपने न्याय के इस सिद्धान्त के द्वारा एक ओर उदारवादी लोकतन्त्र का समर्थन करता है तथा दूसरी ओर समाज के निर्धन और कमजोर वर्गों को संरक्षण प्रदान करता है।

जॉन रॉल्स के मतानुसार एक उत्तम समाज की स्थापना के लिए न्याय का होना अनिवार्य है, क्योंकि न्याय के बिना एक उत्तम समाज की स्थापना हो ही नहीं सकती है। जिस समाज में न्याय का अभाव होगा, उसे असभ्य समाज की संज्ञा दी जायेगी। रॉल्स न्याय के अपने सिद्धान्त के अन्तर्गत उपयोगितावाद को स्वीकार नहीं करता है। उपयोगितावाद के समर्थक बेंथम के अनुसार न्याय की प्राप्ति तब ही हो सकती है जब राज्य 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख' की प्राप्ति के लिए कार्य करे। रॉल्स बेंथम के इस विचार से सहमत नहीं हैं क्योंकि अधिकतम लोग अधिकतम सुख की प्राप्ति के लिए दूसरे लोगों का शोषण और दमन करेंगे जिससे श्रमिकों को अत्यधिक हानि होगी। वह कहता है कि इस सिद्धान्त से किस व्यक्ति को कितनी हानि पहुंचेगी, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

जॉन रॉल्स के वितरणात्मक न्याय के इस सिद्धान्त की विवेचना निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है-

**न्याय का सरोकार किन वस्तुओं से है (What are the Concerns of Justice)** - जब हम रॉल्स के वितरणात्मक न्याय का उल्लेख करते हैं, तो सबसे पहले यह सवाल उठता है कि किन चीजों का वितरण किया जाना है। रॉल्स के मनातुसार उन वस्तुओं का वितरण किया जाना है जिनकी कामना सभी मनुष्य करते हैं। ये वस्तुएं हैं : अधिकार व स्वतन्त्रताएं (lights and liberties), सुयोग्य अथवा अवसर (opportunities), आय और संपदा (income and wealth) तथा वे समस्त वस्तुएं जो आत्म-सम्मान का आधार हैं। रॉल्स इन वस्तुओं को 'समाज के लिए प्राथमिक वस्तुएं' (social primary goods) कहकर पुकारता है। न्याय का सरोकार इन सामाजिक प्राथमिक वस्तुओं से है। अब प्रश्न यह उठता है कि इन प्राथमिक वस्तुओं का वितरण किस आधार पर किया जाये अर्थात् इनका वितरण समानता के आधार पर किया जाए या योग्यता के आधार पर या फिर आवश्यकताओं (needs) के आधार पर। इस प्रश्न का उत्तर देते समय रॉल्स सामाजिक समझौते के सिद्धान्त (Social Contract theory) का सहारा लेता है।

**अज्ञान का पर्दा (Veil of Ignorance)**- सामाजिक समझौते के सिद्धांत के प्रतिपादक एक ऐसे युग की कल्पना करते हैं जब राज्य का जन्म नहीं हुआ था। इस युग या अवस्था को ये प्राकृतिक अवस्था (State of Nature) की संज्ञा देते हैं। रॉल्स के मतानुसार इस प्राकृतिक अवस्था में रहने वाले लोग अज्ञान के पर्दे के पीछे बैठे हैं। इन लोगों को अपनी प्रतिभाओं (talents) और श्रेष्ठताओं (advantages) के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं है। इन्हें तो यह भी पता नहीं है कि किस राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत रहने का निर्णय ये कर रहे हैं, वह कैसी होगी। किन्तु ये विवेकशील प्राणी अवश्य हैं और अपने विवेक के प्रयोग से तीन निष्कर्षों पर पहुंचते हैं: प्रयम, एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था स्थापित की जाये जिसके अन्तर्गत सभी को अधिकतम समान स्वतन्त्रता उपलब्ध हो। इसको वह अधिकतम समान स्वतन्त्रता का सिद्धान्त (Principle of Greatest Equal Liberty) कहता है। द्वितीय, सभी को अवसरों की उचित समानता मिले। इसको वह अवसरों की उचित समानता का सिद्धान्त (Principle of Fair Equality of Opportunity) कहता है। अज्ञान के इस पर्दे के पीछे जो लोग बैठे हैं, उनके लिए समझदारी की बात यही होगी कि वे एक ऐसे समाज का चयन करें जिसमें कम से कम असमानताएं विद्यमान हों। थोड़ी सी समझ रखने वाले व्यक्ति को भी यदि एक डबल रोटी के टुकड़े करने को कहा जाये और उसे यह पता न हो कि उसे कौन सा टुकड़ा मिलना है, तो वह जहाँ तक सम्भव होगा, उस डबलरोटी के बराबर-बराबर टुकड़े ही करेगा। तृतीय, व्यक्ति-व्यक्ति के वीच भेद-भाव तब ही उचित ठहराया जा सकता है, जब यह सिद्ध किया जा सके कि इससे समाज के सर्वाधिक दीन-हीन वर्ग की स्थिति अधिक अच्छी बनी रहेगी। इसको वह भेद-भाव का सिद्धान्त (Principle of Difference) कहता है। जॉन रॉल्स ने

न्याय के जिन तीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, उनकी हम संक्षिप्त विवेचना यहाँ प्रस्तुत करेंगे।

**न्याय का प्रथम सिद्धान्तः समान आधारभूत स्वतन्त्रताएं** (First Principle of Justice: Equal Right to Basic Liberties)- जॉन रॉल्स के अनुसार न्याय का प्रथम सिद्धान्त यह है कि सभी व्यक्तियों को अपने व्यक्तित्त्व के विकास के लिए मूलभूत स्वतन्त्रताएं प्राप्त होनी चाहिएं। वह कहता है कि उदारवादी लोकतन्त्र एक ऐसी व्यवस्था है जो सभी नागरिकों को समान स्वतन्त्रताएं एवं अधिकार प्रदान करती हैं, इसीलिए उदारवादी लोकतन्त्र एक ऐसी व्यवस्था है जिसका कोई विकल्प सम्भव नहीं है। उदार लोकतांत्रिक सरकारें जिन अधिकारों व स्वतन्त्रताओं पर बल देती है, वे निर्विवाद हैं। जिन अधिकारों व स्वतन्त्रताओं पर ये बल देती हैं उनमें से कुछ प्रमुख अधिकार व स्वतन्त्रताएं हैं-विचार-अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, धर्म व अंतःकरण की स्वतन्त्रता, सम्पत्ति का अधिकार, उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व तथा विवाह करने एवं परिवार बसाने का अधिकार। रॉल्स वयस्क मताधिकार पर आधारित संवैधानिक लोकतन्त्र का समर्थन करता है। संवैधानिक लोकतन्त्र में समयबद्ध चुनाव होते रहते हैं; न्याय पालिका स्वतंत्र होती है और जनसम्पर्क के माध्यमों पर सरकार का एकाधिकार नहीं होता है।

**न्याय का दूसरा सिद्धान्तः अवसरों की समानता (**Second Principle of Justice: Equality of Opportunity)- रॉल्स के सिद्धान्त की दूसरी विशेषता है-अवसरों की समानता। वह पूँजीवादी व्यवस्था का समर्थन करता है क्योंकि इसमें लोगों को उद्योग-धन्धे स्थापित करने के समान अवसर मिलते हैं। उसके अनुसार सरकार इतनी शक्तिशाली और प्रभावी होनी चाहिए कि वह इन कार्यों को सम्पन्न कर सके: प्रयम, बाजार पूरी तरह से प्रतियोगी (competitive) बना रहे ताकि बाजार कीमत पर कोई भी उत्पादक अपना माल बेच सके और खरीददार अधिक या कम मूल्य पर सामान खरीद सके। उसके अनुसार प्रतियोगी बाजार में वस्तुओं की कीमतें ठीक रहती हैं क्योंकि एकाधिकार में अधिक शोषण होता है। द्वितीय, भौतिक संसाधनों का सर्वोत्तम प्रयोग हो सके जिससे कि इनकी बर्बादी न हो पाये। तृतीय, सम्पत्ति और धन का समान व्यापक वितरण होना चाहिए, केन्द्रीयकरण नहीं। चतुर्य, सभी लोगों की मूलभूत आवश्कताओं की पूर्ति होनी चाहिए तथा पंचम, सभी लोगों को ऊँचा उठने के बराबर अवसर प्राप्त होने चाहिएं। इसके लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

**न्याय का तीसरा सिद्धान्तः आय का पुनर्वितरण (**Third Principle of Justice: Redistribution of Income)- रॉल्स कहता है कि अवसरों की समानता के कारण पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति अधिक से अधिक धन कमाने और सम्पत्ति अर्जित करने का प्रयास करता है, लेकिन व्यक्ति अपनी योग्यता एवं निपुणता के आधार पर जो सम्पत्ति अर्जित करता है, उस पर केवल उसका अधिकार नहीं होता है, बल्कि उसके परिवार और यहाँ तक कि पूरे समाज का अधिकार भी होता है क्योंकि उसकी सफलता में परिवार एवं समाज का भी योगदान होता है। समाज की व्यापक भलाई की दृष्टि से यह जरूरी है कि आय और संसाधन इस प्रकार से बंटे हुए हों कि सामूहिक हितों की पूर्ति हो सके। इसीलिए उद्योगपतियों की आय का एक बड़ा हिस्सा करों के रूप में सरकार के पास चला जाता है और सरकार इस आय को देश की सुरक्षा तथा यातायात व संचार आदि पर खर्च करती ही है, और साथ ही वह इससे निर्धन जनता को शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और बेरोजगार भत्ते आदि भी उपलब्ध कराती है। इस तरह आय का पुनर्वितरण हो जाता है। अन्य शब्दों में, सरकार करदाताओं की आय का हस्तांतरण समाज के कमजोर वर्ग को कर देती है।

आय के इस हस्तांतरण के विषय में रॉल्स यह चेतावनी भी देता है कि पूँजीपतियों या उद्योगपतियों पर एक निश्चित मात्रा में ही कर लगाये जाने चाहिएं। वह कहता है कि करों की दर इतनी ऊँची नहीं होनी चाहिए कि ये लोग अपने उद्योगों में रूचि लेना ही छोड़ दें। यदि सरकार ऊँची दर पर कर लगायेगी तो इससे उद्योगों का विस्तार ही रूक जायेगा और यह समाज के लिए हानिकारक होगा। इसलिए वह इस बात पर बल देता है कि कर की दर इतनी रहे कि करदाता आसानी से और अपनी इच्छा से कर देने को तैयार रहें तथा कर देने में किसी तरह की कठिनाई अनुभव न करें। वस्तुतः कर दाता पर अधिक कर लगाना उसके लिए अन्यायकारी होगा।

**आय का हस्तांतरण सर्वाधिक दीन-हीन के अधिकतम लाभ के लिए (Transfer of Income for the Greatest Benefit of the Least-advantaged)**- रॉल्स कहता है कि अवसरों की समानता के कारण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति अपना पूर्ण विकास कर लेता है, किन्तु इससे समाज के सभी वर्गों का विकास नहीं हो पाता है जिसके कारण समाज का एक वर्ग

इससे वंचित रह जाता है। वह वर्ग जो अपना विकास नहीं कर पाता है, दरिद्र लोगों का होता है। रॉल्स चाहता है कि धनिक वर्ग की आय का हस्तांतरण निर्धन और दरिद्र व्यक्तियों के लिए किया जाये। वह कहता है कि समाज में न केवल धनिक और निर्धन के बीच असमानता पाई जाती है, बल्कि स्वयं गरीबों के मध्य भी असमानता पाई जाती है। उसके अनुसार निर्धनों में भी कुछ व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं जब कि अनेक निर्धनों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है। निर्धनों में निर्धन इन व्यक्तियों की हालत इतनी दयनीय होती है कि ये अपना भोजन भी नहीं जुटा पाते हैं। रॉल्स इस बात पर बल देता है कि धनिकों की आय का हस्तांतरण, दरिद्रों में भी जो सर्वाधिक दरिद्र है, उसके लिए किया जाना चाहिए। रॉल्स के अनुसार सम्पूर्ण समाज एक ऐसी माला की तरह है जिसकी कड़ियाँ समाज के सभी व्यक्ति होते हैं। स्पष्ट है कि इस माला की मजबूती इसकी कड़ियों पर निर्भर करती है। वह कहता है कि माला की मजबूती उसकी सर्वाधिक कमजोर कड़ी की मजबूती से अधिक नहीं हो सकती है। इसलिए यह आवश्यक है कि समाज के सबसे निर्धन एवं कमजोर व्यक्ति को मजबूती प्रदान की जाये और यह क्रम तब तक जारी रहे, जब तक कि सभी निर्धन एवं कमजोर व्यक्ति मजबूत न बन जाये। इससे न केवल दरिद्र एवं कमजोर व्यक्तियों का भला होगा, बल्कि धनिक वर्ग का भी भला होगा। भारत में पिछड़े वर्गों के आरक्षण की सरकारी सेवाओं में व्यवस्था की गई है।

**आलोचना** (Criticism)- रॉल्स के वितरणात्मक न्याय के इस सिद्धान्त की काफी आलोचना हुई है। समाजवादियों, मार्क्सवादियों और उदारवादियों सभी ने इसको अमान्य ठहराया है। मार्क्सवादियों ने जिनमें मिल्टन फिस्क और रिचर्ड मिलर का नाम विशेष रूप से लिया जाता है, इस सिद्धान्त में निम्नलिखित दोष बताये हैं-

1. रॉल्स ने पूँजीवादी व्यवस्था का समर्थन किया है। अपने इस सिद्धान्त के माध्यम से वह अमेरिकी पूँजीवाद को बचाने का प्रयास करता है। ये विद्धान यह भी कहते हैं कि रॉल्स पूँजीपतियों के हितों का समर्थक है।

2. रॉल्स वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त का समर्थन नहीं करता है, क्योंकि वह समाज के वर्गीय स्वरूप को नकारने का प्रयास करता है। वह इस बात को मानने से इंकार करता है कि राज्य सिर्फ पूँजीपतियों के हितों की ही रक्षा करता है। उल्टे वह तो इस बात को स्वीकार करता है कि पूँजीपति लोग वर्गीय भावना से ऊपर उठकर आम जनता के कल्याण के लिए कार्य कर सकते हैं। ये विद्वान मानते हैं कि राज्य वर्ग-विभेद पर आधारित है और यह केवल धनिक वर्ग के हितों की ही रक्षा करता है।

3. रॉल्स के सिद्धान्तों पर चलकर पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करना सम्भव नहीं है। मार्क्सवादियों की धारणा है कि राज्य का उद्देश्य गरीबी निवारण करना नहीं, बल्कि समाज को बदलना है, किन्तु रॉल्स अपने इस सिद्धान्त द्वारा राज्य को गरीबी निवारण का कार्य सौंपता है।

4. मार्क्सवादियों का कहना है कि समाज का वर्तमान ढांचा संघर्ष के बिना नहीं बदल सकता है। मिल्टन फिस्क के शब्दों में, "संघर्ष लगातार हमारा भ्रम दूर कर रहा है। संघर्ष अनुबंध के विचार के पूर्णतया विपरीत है।"

उदारवादी विचारक भी रॉल्स के न्याय के इस सिद्धान्त की आलोचना करते हैं। बनाई क्रिक तया मैक्फरसन इसे पूर्णतया बुद्धिसंगत और वैज्ञानिक नहीं मानते हैं। इन विद्वानों के अनुसार इस सिद्धान्त में निम्नलिखित दोष हैं-

(i) यह कोई नवीन सिद्धान्त नहीं है, क्योंकि रॉल्स ने अपने परिश्रम द्वारा उदारवादी परम्परा को ही न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया है।

(ii) उदारवादी विचारक उस सामाजिक समझौते के सिद्धान्त को एक परिकल्पना (Hypothesis) मानते हैं, जिसको रॉल्स ने अपने इस सिद्धान्त का आधार बनाया है। साथ ही वे अज्ञान के पर्दे की बात को भी तर्कसंगत नहीं मानते हैं।

(iii) रॉल्स ने सिर्फ आय के पुनर्वितरण की ही बात की है। उसने राजनीतिक शक्ति के विभिन्न स्त्रोतों, राज्यसत्ता के संगठन और वितरण का कोई उल्लेख नहीं किया है, इसीलिए यह मानना पड़ेगा कि उसने राज्य के किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन ही नहीं किया है।

(iv) ब्रायन बेरी का मत है रॉल्स का न्याय का यह सिद्धान्त कारगर नहीं है, क्योंकि उसके कई तर्क निराधार हैं और सारी

योजना एक गोरख-धन्धा है जिसमें वह आदर्श सम्बन्धी और आवश्यकता सम्बन्धी स्थिति के मध्य झूलता रहता है।

निष्कर्ष (Conclusion)-निःसन्देह मार्क्सवादियों और उदारवादियों ने रॉल्स के सिद्धान्त की काफी आलोचनाएं की हैं, किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि यह सिद्धान्त एकदम निराधार एवं महत्वहीन है। वस्तुतः मार्क्सवादियों का देखने का अपना एक विशिष्ट दृष्टिकोण है, इसीलिए उनकी सभी बातों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। रॉल्स का यह सिद्धान्त एक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का महत्त्व निम्नलिखित बातों से स्पष्ट हो जाता है-

1. वह यथास्थिति (status quo) का समर्थन नहीं करता है, क्योंकि वह सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में परिवर्तन लाना चाहता है जिससे कि आर्थिक विषमताएं समाप्त हो जाएं; रोजगार के अवसरों का विस्तार हो तथा आम जनता को विकास के अवसर उपलब्ध हों।

2. वह एक ऐसी व्यवस्था का समर्थन करता है जो पूँजीवादी होते हुए भी समाजवाद के आदर्शों को आत्मसात् कर सके । इस दृष्टि से वह पूँजीवाद और समाजवाद के मध्य तालमेल बैठाने का प्रयास करता है।

3. वह दरिद्र तथा कमजोर वर्गों के कल्याण पर बल देता है। इस तरह वह राज्य के कल्याणकारी स्वरूप का समर्थन करता है।

4. वह लोकतन्त्र का समर्थन करता है। उसका यह सिद्धान्त उदारवादी लोकतन्त्र से पूरी तरह मेल खाता है। इस विषय में स्टीवेन ल्यूक्स का कहना है, "रॉल्स की उल्लेखनीय उपलब्धि यह है कि उसने न्याय के ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिसे उदारवादी लोकतान्त्रिक न्याय का सिद्धान्त कहा जा सकता है"

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि रॉल्स ने न्याय के एक ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जो उदारवादी, लोकतान्त्रिक और कल्याणकारी राज्य की आवश्यकताओं के अनुरूप है तथा जिसके माध्यम से वह मुक्त अर्थव्यवस्था को कुछ उपायों द्वारा विनियमित करने का प्रयास करता है।

### 7. रॉबर्ट नौजिक के न्याय सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

**उत्तर:** रॉबर्ट नोजिक का न्याय का सिद्धान्त (Robert Nozick's Theory of Justice)

रॉबर्ट नॉजिक बीसवीं शताब्दी का एक ऐसा उदारवादी-व्यक्तिवादी विचारक है जिसने न्याय के योग्यतावादी सिद्धान्त का समर्थन किया है। उसने अपनी पुस्तक 'अराजकता, राज्य और काल्पनिक राज्य' **(Anarchy, State and Utopia)** में वितरणात्मक न्याय के सिद्धान्त को अस्वीकार किया है। अपने तर्कों के द्वारा उसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पूर्णतः प्रतिस्पर्धा समाज (competitive society) ही न्यायपूर्ण समाज होता है। वह कहता है कि स्वतन्त्रता और समानता पर पूरा-पूरा बल दिया जाना चाहिए। उसने इस विचार की कटु आलोचना की है कि धन-सम्पदा के पुनर्वितरण करने और आर्थिक समानता लाने में न्याय निहित है। वह राज्य की धनी व्यक्तियों के ऊपर कर लगाने की नीति का विरोध करता है। वह कहता है कि इससे समाज में सामाजिक-आर्थिक समानता स्थापित नहीं की जा सकती है। उसने इस बात पर बल दिया है कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता को सामाजिक-आर्थिक समानता द्वारा प्रतिबन्धित नहीं किया जाना चाहिए। वह राज्य द्वारा जन सुविधाएं जुटाने व शिक्षा और न्यूनतम जीवन स्तर उपलब्ध कराने को उचित नहीं ठहराता है। उसकी धारणा है कि जिन व्यक्तियों ने अपनी योग्यता के आधार पर धन-सम्पत्ति अर्जित की है, वे अपनी इच्छा से इसका पुनर्वितरण भले ही करें, किन्तु उन्हें इस कार्य के लिए राज्य द्वारा बाधित नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे इन लोगों की स्वतन्त्रता प्रतिबन्धित होती है। वह कहता है कि व्यक्ति को अपनी योग्यता के आधार पर धन अर्जित करने की पूरी-पूरी स्वतन्त्रता प्रदान की जानी चाहिए।

**रॉबर्ट नोजिक के न्याय सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएं —**

1. **न्याय का ऐतिहासिक सिद्धान्त (**Historical Principle of Justice)-रॉबर्ट नोजिक ने ऊपर-लिखित अपनी पुस्तक में

व्यक्तिगत सम्पत्ति (individual property) की वर्तमान स्थिति को न्यायसंगत ठहराने का प्रयास किया है। इस विषय में वह तर्क प्रस्तुत करता है कि यदि व्यक्ति ने अतीत में उचित तरीके से सम्पत्ति अर्जित की है अर्थात् सम्पत्ति के संग्रह में उसने छल-कपट, या हेरा-फेरी का सहारा नहीं लिया है, तो ऐसी सम्पत्ति न्यायसंगत मानी जाएगी। किन्तु यदि किसी व्यक्ति ने अतीत में सम्पत्ति के अर्जन के लिए छल-कपट या हेरा-फेरी का सहारा लिया है, तो निश्चय ही इसके कारण अतीत में अन्याय हुआ है। किन्तु यदि अतीत के सभी अन्यायपूर्ण कार्यों को ठीक करने के प्रयास किये जायें या गलतियों को दूर करने के उपाय किए जायें, तो इससे अनेक प्रकार के विवाद और समस्याएं खड़ी हो जायेंगी। इसलिए वह कहता है कि अतीत में अनैतिक साधनों द्वारा अर्जित सम्पत्ति का परिष्कार (ratification) करके ही इसे न्यायसंगत ठहराया जा सकता है।

**2. सम्पत्ति के अधिकार का समर्थन (**Support to Right to Property)-रॉबर्ट नोजिक व्यक्ति के सम्पत्ति के अधिकार का प्रबल समर्थन करता है और कहता है कि इस अधिकार पर राज्य द्वारा किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाना चाहिए। यदि ऐसा किया जाता है तो यह अन्यायपूर्ण ही होगा। उसके मतानुसार व्यक्ति का अपनी वर्तमान सम्पत्ति पर पूरा-पूरा अधिकार है और अपनी योग्यता के आधार पर जो सम्पत्ति वह अर्जित करता है, उस पर भी उसका पूर्ण अधिकार है। वह कहता है कि सरकार को व्यक्ति की सम्पत्ति पर केवल उतना ही कर लगाना चाहिए, जितना कि देश की सुरक्षा और देश में शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखने हेतु जरूरी है। वह कहता है कि सरकार को सामाजिक कल्याण के लिए धनिक व्यक्तियों पर कर बिल्कुल भी नहीं लगाना चाहिए। इस विषय में टॉनी वाल्टन ने लिखा है, "नोजिक ने अनम्य व्यक्तिवाद (Uncompromising Individualism) के सहारे यह समझाने की कोशिश की है कि सम्पत्ति के ऊपर व्यक्ति का असीम अधिकार है और यह दावा बेकार है कि व्यक्ति की सम्पदा को पूरे समाज की सम्पदा माना जाये।"

**3. प्रत्येक व्यक्ति स्वयं एक साध्य है (**Every individual is an end in itself)- रॉबर्ट नोजिक का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में एक साध्य है। वह स्वभाव से एक स्वतन्त्र प्राणी है। अच्छाई-बुराई की परख व्यक्ति को अपनी स्वतन्त्र बुद्धि के कारण ही हो सकती है, इससे होने वाले परिणामों के द्वारा नहीं, जैसा कि उपयोगितावादी विचारकों की धारणा है। वह कहता है कि यदि किसी व्यक्ति के पास कोई खास योग्यता अथवा हुनर है, तो उसे अपने लाभ के लिए उस योग्यता या हुनर का प्रयोग करने की पूरी-पूरी स्वतन्त्रता है। नोजिक के मतानुसार कोई व्यक्ति क्या प्राप्त करता है, इसका निर्धारण उसकी योग्यता ही करती है। इसीलिए जिस व्यक्ति की योग्यता जितनी ऊँची होगी, उसकी मांग भी उतनी ही अधिक होगी और उसे पुरस्कार या प्रतिफल भी उतना ही अधिक मिलेगा।

**4. राज्य एक चौकीदार मात्र है** (State is a merely a Watchman)-जिस तरह हरर्बट स्पेन्सर राज्य को एक पुलिस राज्य मानता है, उसी तरह रॉबर्ट नीजिक ने भी राज्य को पुलिस राज्य ही माना है-एक ऐसा राज्य जिसका कार्य अपने नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करना और शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखना है। इससे अधिक कुछ नहीं। वह कहता है कि राज्य का दायित्व है कि वह अपने नागरिकों को हत्या, चोरी और छल-कपट से बचाये तथा व्यक्तियों द्वारा स्वेच्छा से किये अनुबंध (Contract) को लागू करांये, क्योंकि अनुबंधों से ही व्यापार व उद्योग चलते हैं। उसके मतानुसार प्रत्येक सम्पत्ति व्यक्ति के परिश्रम का परिणाम है और इसलिए उस पर व्यक्ति का पूरा अधिकार है। व्यक्ति की ऐसी सम्पत्ति की रक्षा करना राज्य का दायित्व है।

**5. राज्य के कम से कम कार्य** (Minimum Functions of State)-रॉबर्ट नोज़िक के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार पुरस्कार (प्रतिफल) पाने का अधिकारी है, किन्तु यह तब ही सम्भव है जब राज्य कम से कम कार्य करे, क्योंकि राज्य द्वारा अधिक कार्य करने से व्यक्ति की स्वतन्त्रता बाधित होती है, जब कि योग्यता के अनुसार काम करने एवं पुरस्कार पाने के लिए व्यक्ति स्वतन्त्र होना चाहिए। यही कारण है कि नोजिक राज्य को सामाजिक, आर्थिक, साँस्कृतिक एवं पारिवारिक मामलों में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं देता है। वह यह भी स्वीकार नहीं करता है कि राज्य कमजोर एवं निर्धन व्यक्तियों की सहायता करे और इसके लिए धनी व्यक्तियों पर कर लगाये।

**6. योग्यता के अनुरूप वितरण (**Distribution according to Entiltlement)-रॉबर्ट नोजिक के मतानुसार न्याय का अर्थ है- प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता और इसके आधार दिये उसके योगदान, के अनुसार ही पुरस्कार मिलना। अन्य शब्दों में, अपनी योग्यता के अनुसार व्यक्ति जैसा कार्य करेगा, वह उसी के अनुसार पुरस्कार पायेगा। वह कहता है कि समानता के लिए व्यक्ति की स्वतन्त्रता को बलिदान नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यदि ऐसा किया जायेगा, तो इससे न्याय की नहीं, बल्कि

अन्याय की स्थापना होगी। अतः यदि राज्य व्यक्ति की योग्यता की उपेक्षा करके सभी को समान पुरस्कार देगा, तो इससे व्यक्ति को धक्का लगेगा और वह काम करने में कम रूचि लेने लगेगा और इससे समाज को हानि होगी।

**7. अयोग्य को पुरस्कार नहीं** (No Reward for Undeserving)-रॉबर्ट नोजिक सामाजिक न्याय को एक निरर्थक विचार मानता है और इसीलिए इसका घोर विरोध करता है। यह रॉल्स के आय के पुनर्वितरण के सिद्धान्त की भी आलोचना करता है। उसका मत है कि जो व्यक्ति जिस पुरस्कार का हकदार नहीं है, उसको राज्य द्वारा वह पुरस्कार नहीं दिया जाना चाहिए। वह कहता है कि राज्य को अयोग्य व्यक्ति की किसी प्रकार की कोई सहायता नहीं करनी चाहिए। इसी आधार पर वह राज्य द्वारा गरीबों को आवास, शिक्षा, चिकित्सा और बेरोजगारी भत्ता दिये जाने का विरोध करता है। वह समाज के योग्य व्यक्तियों से कर वसूल करके, इससे गरीबों व निर्बलों की सहायता करने के राज्य के कार्य को एकदम अनुचित मानता है। उसका विचार है कि यदि गरीब व निर्बल व्यक्ति शिक्षा एवं चिकित्सा आदि का खर्च स्वयं वहन नहीं कर सकता है, तो उसे धनी व्यक्तियों द्वारा चलाये गये खैराती स्कूलों और अस्पतालों में जाना चाहिए, न कि राज्य पर बोझ बनना चाहिए।

**8. प्रतिस्पर्धात्मक बाजार व्यवस्था का समर्थन** (Support to Competitive Market System)-रॉबर्ट नॉजिक ने प्रतिस्पर्धात्मक बाजार व्यवस्था का समर्थन किया है। यह कहता है कि व्यक्ति क्या और कितना प्राप्त करेगा, इसका निर्धारण प्रतिस्पर्धात्मक बाजार व्यवस्था द्वारा ही किया जा सकता है। जिस व्यक्ति में जितनी प्रतिभा व योग्यता होगी, उत्तकी प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में उतनी ही मांग होगी और वह उतना ही पुरस्कार प्राप्त कर सकेगा। वह कहता है कि प्रतिस्पर्धात्मक बाजार व्यवस्था के तहत न केवल प्रतिभा सम्पन्न एवं योग्य व्यक्ति अधिक धन अर्जित कर पायेगा, बल्कि इससे समाज भी प्रगति कर सकेगा। इस तरह प्रतिस्पर्धात्मक बाजार व्यवस्था न केवल ऐसे व्यक्ति के लिए बल्कि समाज के लिए भी लाभकारी होगी।

**9. साधिकारी सिद्धान्त के प्रमुख घटक (**Main Components of the Entitlement Theory)-नॉजिक ने न्याय के ऐतिहासिक सिद्धान्त को अपने विश्लेवण का आधार बनाया है। वह न तो उपयोगितावादी विचारधारा को स्वीकार करता है और न ही उस विचारधारा को जिसके अन्तर्गत राज्य की भूमिका माँ-बाप (Paternalism) जैसी मानी जाती है। नोजिक के न्याय के इस साधिकारी (योग्यतावादी) सिद्धान्त के तीन प्रमुख घटक (तत्त्व) हैं। **प्रथम आत्म-स्वामित्व का सिद्धान्त** (Principle) अर्थात् मेरा शरीर, मेरी सारी योग्यताएं और मेरी धन-संपदा मेरी अपनी सम्पत्ति है। **द्वितीय, सम्पत्ति के स्वतन्त्र प्रयोग का सिद्धान्त** अर्थात् मेरी सम्पत्ति पर मेरा असीम अधिकार है। अन्य शब्दों में, जो सम्पत्ति मैंने वैध साधनों द्वारा अर्जित की है, उसे रखने या बेचने या उसका उपयोग करने का मेरा निजी अधिकार है, भले ही इससे असमानता को बढ़ावा मिले। **तृतीय, अन्याय के परिशोधन का सिद्धान्त** अर्थात् उपयुक्त नियमों के उल्लंघन की स्थिति में मुझे कुछ कानूनी अधिकार प्राप्त हैं। यदि कोई भी व्यक्ति गैर-कानूनी ढंग से मुझे मेरी सम्पत्ति से वंचित करता है, तो मुझे उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने का अधिकार होगा।

**आलोचना (Criticism) -** नोजिक का न्याय का यह साधिकारी सिद्धान्त अनेक दोषों से भरपूर है। इसके प्रमुख दोष इस प्रकार हैं-

1. नोजिक राज्य को एक पुलिस राज्य मानता है। वर्तमान युग में इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि वर्तमान राज्य एक सकारात्मक राज्य है, न कि नकारात्मक राज्य जैसा कि वह मानता है। वर्तमान राज्य लोक कल्याणकारी राज्य है और जनता के कल्याण के लिए अनेक कार्य करता है।

2. नोजिक ने सामाजिक न्याय की अवधारणा को समूल नष्ट कर दिया है जो कि सही नहीं है। आज सभी राज्य सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए प्रयासरत हैं। वस्तुतः सामाजिक न्याय एक त्याज्य वस्तु नहीं है, इसीलिए इसका परित्याग करके समाज प्रगति नहीं कर सकता है।

3. नोजिक की धारणा है कि राज्य को गरीबों एवं दुर्बल व्यक्तियों की भलाई के लिए शिक्षा और चिकित्सा आदि की व्यवस्था बिल्कुल नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करना प्राकृतिक नियम के विरुद्ध है। वह कहता है निर्धन और दुर्बल व्यक्तियों को धनी लोगों द्वारा स्थापित खैराती स्कूलों और अस्पतालों में जाना चाहिए; किन्तु ऐसे स्कूलों और अस्पतालों की संख्या इतनी

कम होती है कि ये इन वर्गों की आवश्कताओं की पूर्ति नहीं कर सकते हैं। इसके अलावा गरीब एवं दुर्बलों को धनी व्यक्तियों की मेहरबानी पर छोड़ना भी तर्कसंगत नहीं है

4. नोजिक व्यक्ति के सम्पत्ति के अधिकार पर किसी भी तरह के प्रतिबन्ध लगाने का समर्थन नहीं करता है। यदि सम्पत्ति के इस अधिकार पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाये जायेंगे तो इससे सार्वजनिक हितों की उपेक्षा होगी। वस्तुतः सार्वजनिक हित में सम्पत्ति पर प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं। यहाँ तक कि सार्वजनिक हित के लिए सरकार व्यक्ति की सम्पत्ति का अधिग्रहण भी कर सकती है।

5. मार्क्सवादी विचारकों की धारणा है कि सम्पत्ति का संग्रह श्रमिकों की खून-पसीने की कमाई से ही सम्भव हो सकता है, किन्तु नोजिक तो यही मानकर चलता है कि धनी पूँजीपति वर्ग अपनी बुद्धि, योग्यता एवं परिश्रम से ही सम्पत्ति अर्जित करता है। नोजिक की इस मान्यता को स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि सम्पत्ति का संचय तो दूसरे की कमाई पर हाथ साफ करके ही किया जा सकता है।

**निष्कर्ष (Conclusion) -** उपर्युक्त आलोचनाओं के बाद भी रॉबर्ट नोजिक का न्याय का यह सिद्धान्त काफी महत्त्वपूर्ण है। इसका महत्व इस बात में निहित है कि यह योग्यता को न्याय की कसौटी मानता है। निःसन्देह प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार ही पुरस्कार या प्रतिफल मिलना चाहिए। यही न्याय की मांग है। आज सभी राज्यों में उच्च योग्यता वाले व्यक्तियों को उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता है और वे उच्च वेतन प्राप्त करते हैं। यहाँ तक तो रॉबर्ट नोजिक की बात स्वीकार्य है, किन्तु इससे बढ़कर जब वह यह कहता है कि राज्य को निर्बल एवं निर्धन लोगों की सहायता नहीं करनी चाहिए, तो उसकी इस बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। संक्षेप में, उसकी अति-व्यक्तिवादी विचारधारा सामाजिक समस्याओं का समाधान करने में सक्षम नहीं है, अतः इसमें सुधार किये जाने की जरूरत है।

## Unit-IV

### Q. फासीवाद से आप क्या समझते हैं? इसके स्त्रोत, विकास एवं सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए I (What do you understand by Fascism? Describe its sources, development and main principles.)

**उत्तर-**फासीवाद एक ऐसी सर्वाधिकारवादी विचारधारा है जो व्यक्ति की तुलना में सर्वसत्ताधारी राज्य को महत्त्व प्रदान करती है। यह विचारधारा प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धों के बीच इटली में पनपी और काफी हद तक द्वितीय विश्व युद्ध का कारण बनी।

### फासीवाद का अर्थ (Meaning of Fascism)

'फासीवाद' शब्द जिसे अंग्रेजी भाषा में '**फासिज्म**' कहते हैं, की उत्पत्ति इटालिन भाषा के जिस 'फैसियो' (Fascio) शब्द से हुई है, उसका इटालियन भाषा में अर्थ होता 'लकड़ियों का बँधा हुआ गठ्ठा और कुल्हाड़ी' । प्राचीन काल में रोम का राष्ट्रीय-चिह्न यही फैसियो था। इसमें लकड़ियों के बँधे हुए लट्ठों को राष्ट्रीय एकता का व कुल्हाड़ी को शक्ति का प्रतीक माना जाता था। मुसोलिनी के नेतृत्व में इटली के फासी दल ने इस चिह्न को अपनाया जो इस बात का प्रतीक था कि फासी दल का लक्ष्य राज्य के नियन्त्रण के अंर्तगत राष्ट्रीय एकता पर आधारित समाज की स्थापना करना है।

कुछ विद्वानों ने फासीवाद को **परिभाषित** करने का प्रयास किया है -

**मेरियन डी. आयरिश** के मतानुसार, "फासीवाद अपने उन्नत रूप में एक दल का शासन है जिस पर एक ऐसे तानाशाह का नियन्त्रण रहता है जो सर्वाधिकारवादी राज्य की स्थापना करता है। इसने 19वीं शताब्दी के राष्ट्रवाद की राजनीति में तथा 20वीं शताब्दी के समूहंवाद को आर्थिक क्षेत्र में सम्बद्ध कर दिया है।"

**सेबाइन** के शब्दों में, "फासीवाद विभिन्न स्रोतों से लिए गये ऐसे विचारों का संग्रह है जिनका प्रयोग किसी स्थिति की जरूरतों

को ध्यान में रखकर किया जाता है।"

**फासीवाद के स्त्रोत (Sources of Fascism)**

फासीवादी विचारधारा को अनेक स्त्रोतों से लिया गया है। इसके स्त्रोतों के सन्दर्भ में मैक्सी ने लिखा है कि फासीवादी विचारधारा में अनेक तत्त्वों को बड़ी कुशलता के साथ मिश्रित किया गया है। इसीलिए इसके स्रोतों का पता लगाना सरल कार्य नहीं है। मैकियावेली, हॉब्स, फिक्टे, ट्रीटश्के, नीशे, मार्क्स सोरेल एवं शापेनहावर आदि विद्वानों के विचारों के अतिरिक्त अनेक विचारधाराओं का प्रभाव इस पर स्पष्ट नजर आता है। मैक्गवर्न का विचार है कि इटली के फॉसीवादियों को 18वीं शताब्दियों की चार प्रमुख विचारधाराओं- आदर्शवाद, सामाजिक डार्विनवाद, अबुद्धिवाद और परम्परावाद से प्रेरणा मिली थी। इनमें जेम्स के व्यवहारवाद को और सम्मिलित करते हुए फासीवाद के स्रोतों का उल्लेख निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है।

**1. सामाजिक डार्विनवाद (**Social Darwinism)-19वीं शताब्दी में **चार्ल्स डार्विन** नामक एक जीव वैज्ञानिक ने विकासवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। उसका कहना था कि प्राकृतिक जगत में सभी प्राणियों को जीवित रहने के लिए संघर्ष करना पड़ता है और इस संघर्ष में वे ही प्राणी जीवित रहते हैं जो योग्यतम अर्थातु शक्तिशाली होते हैं, जब कि शेष नष्ट हो जाते हैं। **नीत्से** नाम के अन्य सामजिक डार्विनवादी का कहना था कि संघर्ष केवल जीवित रहने के लिए लिए ही नहीं चलता है, बल्कि शक्ति प्राप्त करने के लिए भी हुआ करता है। मुसोलिनी पर सामाजिक डार्विनवाद के इस सिद्धान्त ने बहुत प्रभाव डाला है। इससे प्रेरणा लेते हुए वह कहता है, "संघर्ष ही मानव समाज की प्रगति का मूल मंत्र है।" नीत्से से प्रेरणा लेकर संघर्ष की अवधारणा को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में लागू करते हुए वह कहता है कि विश्व में अनवरत शान्ति न तो सम्भव है और न ही उपयोगी। मानव जाति का उत्थान युद्ध से ही सम्भव है। सामाजिक डार्विनवाद की इसी विचारधारा ने मुसोलिनी को अनुशासन, प्रिय, कठोर एवं साम्राज्यवादी बना दिया था।

**2. अबुद्धिवाद (Irrationalism)** - यह विचारधारा इस बात पर बल देती है कि मनुष्य सोच-समझकर कार्य करने वाला विवेकशील प्राणी नहीं है और इसीलिए वह बुद्धि से प्रेरित होकर कार्य नहीं करता है, बल्कि बुद्धि के स्थान पर अन्तः प्रेरणा, अन्ध-श्रद्धा एवं विश्वास से प्रेरित होकर कार्य करता है। अबुद्धिवाद की इस विचारधारा से प्रेरित होकर मुसोलिनी ने अन्धश्रद्धा अपनाने पर बल दिया। वह कहता है, "हमारी अन्धश्रद्धा हमारा राष्ट्र है, हमारी अन्धश्रद्धा हमारे राष्ट्र की महानता है। विश्वास ही पर्वतों को हिला सकता है, तर्क नहीं। तर्क एक साधन हो सकता है, किन्तु यह जनता की प्रेरक शक्ति नहीं बन सकता है।" इसी आधार पर फासीवाद ने इटली की जनता को दो नारे दिये। प्रथम, मुसोलिनी सदैव ही ठीक कहता है और द्वितीय, मुसोलिनी के आदेशों एवं इच्छाओं में सदैव विश्वास रखना चाहिए। इनका पूरी तरह पालन करना चाहिए और इनके लिए युद्ध तक के लिए तैयार रहना चाहिए। अबुद्धिवाद में विश्वास के कारण ही मुसोलिनी ने इटली की जनता से बुद्धि की अपील नहीं की, बल्कि उसकी कुत्सित भावनाओं को ही भड़काया और उसे ही हर दृष्टि से विवेक-शून्य करने का प्रयास किया।

**3. आदर्शवाद (Idealism)** - काँट, हीगल और फिक्टे के आदर्शवाद को फासीवाद का मुख्य स्रोत माना जाता है। इसीलिए फासीवाद को बहुत अधिक सीमा तक 'हीगल के आदर्शवाद का राजनीतिक शिशु' कहा गया है। आदर्शवाद से फासीवादियों ने व्यक्तिवाद व उदारवादी परम्पराओं से घृणा करना सीखा। साथ ही इससे यह भी सीखा कि नीति-शास्त्र की भाँति राजनीति में व्यक्ति की इच्छाओं की अपेक्षा उसके कर्त्तव्य अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। आदर्शवादी विचारधारा की तरह फासीवादी विचारधारा के अन्तर्गत राज्य को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है और व्यक्ति को किसी भी स्थिति में राज्य का विरोध करने की स्वतन्त्रता नहीं दी गयी है। हीगल ने विश्व-शान्ति का मखौल उड़ाया था और राज्यों के बीच युद्ध को न्यायोचित ठहराया था। मुसोलिनी ने विश्व-शान्ति की उपेक्षा की और इटली को द्वितीय विश्वयुद्ध में झोंक दिया।

**4. परम्परावाद (Traditionalism)** - उन्नीसवीं शताब्दी में इटली के प्रसिद्ध विचारक जोजफ मत्सीनी और जर्मनी के प्रसिद्ध विचारक ट्रीटश्के ने परम्परावाद का समर्थन किया था। इनका कहना था कि किसी राष्ट्र के उत्थान और विकास में उसके ऐतिहासिक अनुभवों और सांस्कृतिक परम्पराओं का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। ट्रीट्श्के का मानना था कि सभी शक्तिशाली राष्ट्र परम्पराओं के पोषक होते हैं । फासीवादियों ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए परम्परावाद का पूरा-पूरा लाभ उठाया। सत्ता प्राप्त करने से पूर्व मुसोलिनी परम्पराओं का विरोध करता था, किन्तु सत्ता सँभालते ही उसने यह अनुभव किया

कि अपनी सत्ता को स्थायी बनाये रखने के लिए गौरवपूर्ण रोमन साम्राज्य, राजतन्त्र तथा रोमन कैथोलिक चर्च की परम्पराएँ लाभकारी सिद्ध हो सकती हैं। इसीलिए रोमन परम्पराओं एवं संस्कृति का अनुसरण करते हुए उसने राजतन्त्र को सुरक्षित रखा और स्वयं नास्तिक होते हुए भी जनता का सम्मान और पोप का सहयोग प्राप्त करने की दृष्टि से उसने 1929 में पोप के साथ एक समझौता कर लिया। वह सदैव ही इस बात पर बल देता था कि किसी राष्ट्र की पहचान उसकी गौरवपूर्ण ऐतिहासिक परम्पराएँ होती हैं। वह कहता था कि इटली का एक गौरवपूर्ण इतिहास रहा है, इसीलिए"इटली को पुनः तीसरी बार मानवता का नेतृत्व करना है।"

5. व्यवहारवाद (Pragmatism) - मुसोलिनी कहा करता था कि उसकी फासीवादी विचारधारा का आधार व्यवहारवाद ही है। वस्तुतः उसका व्यवहारवाद नितान्त अवसरवादी था। उसे अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए जिस सिद्धान्त का अपनाना ठीक लगा, उसने वही अपनाया। सत्ता प्राप्त करने से पूर्व वह धर्म-विरोधी और नास्तिक था, किन्तु सत्ता प्राप्त करते ही उसने ईश्वर की दुहाई देना प्रारम्भ कर दिया और इससे भी बढ़कर पोप के साथ एक समझौता कर लिया। इटली का शासक बनने के एक वर्ष पूर्व उसने घोषणा की थी कि वह किसी भी प्रकार की तानाशाही को पसन्द नहीं करता है, किन्तु सत्ता सँभालने के बाद उसने इटली की लोकतान्त्रिक परम्पराओं को ताक पर रख दिया और स्वयं एक तानाशाह बन बैठा। इतना ही नहीं, सत्ता सँभालते ही उसने अपने पहले के समाजवादी साथियों को जेलों में डलवा दिया; मरवा दिया तथा देश छोड़ने को मजबूर कर दिया। वस्तुतः अपने लक्ष्य की सिद्धि में सहायता देने वाला प्रत्येक उपाय उसके लिए न्यायोचित था।

### फासीवाद का विकास (Development of Fascism)

फासीवाद का विकास प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् इटली में हुआ था। इस विश्व युद्ध में इटली ने ब्रिटेन और फ्राँस आदि मित्र देशों का साथ दिया था और उसे आशा थी कि विजय से होने वाले लाभ में उसे अन्य मित्र-देशों के समान ही हिस्सा मिलेगा, किन्तु इस युद्ध के समापन के पश्चात् 1919 में जो वर्साय की सन्धि (Treaty of Versaills), सम्पन्न हुई, उससे इटली को बहुत निराशा हुई, क्योंकि मित्र-राष्ट्रों ने न तो उसे लूट के लाभ में साझी बनाया और न ही उसे वे उपनिवेश दिये जिन्हें प्राप्त करने की उसे आशा थी और जो उसकी आकाँक्षा भी थी। वस्तुतः वह आस्ट्रियन साम्राज्य के कुछ भागों और अफ्रीका में अपने साम्राज्य का विस्तार चाहता था। सन् 1912 में इटली का टर्की के साथ युद्ध हुआ था, जिसके कारण उत्तकी आर्थिक स्थिति पर दुष्प्रभाव पड़ा था। प्रथम विश्व युद्ध में भी इटली को काफी धन खर्च करना पड़ा था जिससे उसकी आर्थिक स्थिति और भी खराब हो गई थी। जब इटली की लोकतान्त्रिक सरकार घाटे का बजट प्रस्तुत कर रही थी और देश आर्थिक अस्थिरता की और बढ़ रहा था। युद्ध बन्द हो जाने के कारण युद्ध-सामग्री तैयार करने वाले श्रमिक बहुत बड़ी संख्या में बेरोजगार हो गये थे और उनमें असन्तोष बढ़ता जा रहा था। इटली में आये दिन हड़ताले हो रही थीं जिससे उत्पादन में भारी कमी आ गई थी। ऐसी स्थिति में इटली में साम्यवाद के पैर पसारने की सम्भावनाएँ बढ़ गयी थीं।

इन हालातों में मुसोलिनी ने इटली के राजनीतिक जीवन में प्रवेश किया। वह प्रारम्भ से ही इटली के इस युद्ध में भाग लेने का विरोधी था और इस विश्वयुद्ध में भाग लेने से इटली की जनता में जो निराशा व्याप्त थी, उसने मुसोलिनी के सम्मान में वृद्धि कर दी थी। प्रारम्भ में मुसोलिनी को साम्यवादी विचारधारा ने अपील किया। अतः उसने 'फासिसको डी कोम्बे डाई मेण्टो' (Fascisco De Combe Di Mento) नामक एक संस्था स्थापित की, किन्तु इस संस्था का कोई निश्चित कार्यक्रम न था और इसने केवल पूँजीवाद और निरंकुश शासन के विरोध का ही मार्ग अपनाया था। इस संस्था की स्थापना के एक वर्ष बाद ही उसे ऐसा अनुभव हुआ कि इटली की जनता साम्यवाद को पसन्द नहीं करती है, इसीलिए जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए साम्यवाद का स्पष्ट विरोध करना जरूरी है। 1921 में उसके विचारों में तब आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ जब उसने जमींदारों एवं उद्योगपतियों का पक्ष लिया और खुले रूप में राष्ट्रवाद तथा हिंसा का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। लोकप्रियता पाने की दृष्टि से वह राजतन्त्र-विरोधी एवं कैथोलिक-विरोधी अपनी विचारधारा से भी हंट गया। अब फासीवादी सैनिक ढंग से संगठित होने लगे थे और 28 अक्टूबर, 1922 से इनके जत्थे रोम पहुँचने लगे थे। अभी भी फासीवाद दल अधिक शक्तिशाली न था, इसीलिए इसके जत्थों को रोम में प्रवेश करने से रोका जा सकता था, किन्तु इटली के सम्राट ने फासीवाद-विरोधी आदेश पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। 29 अक्टूबर, 1922 को मुसोलिनी को मिली-जुली सरकार का गठन करने के लिए आमन्त्रित किया गया। उसने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया, किन्तु समय बीतने के साथ-साथ उत्तके इरादे प्रकट होने लगे। उसने संसदीय पद्धति को भंग कर दिया; फासीवादी दल को छोड़कर शेष दलों को अवैध घोषित कर दिया और अपने

विरोधियों का दमन प्रारम्भ कर दिया। 1926 में उसने इटली की संसद को भंग कर दिया। अब इटली में मुसोलिनी के नेतृत्व वाली फासीवादी सरकार स्थापित हो चुकी थी, जो जुलाई, 1943 में इटली की पराजय तक बनी रही। 1945 में विश्व-युद्ध में जर्मनी और जापान के साथ इटली की भी पराजय हुई। इसी के साथ इटली में फासीवादी दल भी समाप्त हो गया।

### फासीवाद के प्रमुख सिद्धान्त/प्रमुख विशेषताएं (Main Principles/Characteristics of Fascism)

प्रत्येक विचारधारा के कुछ निश्चित सिद्धान्त होते हैं जिनसे उसकी पहचान होती है। फासीवादी विचारधारा भी इसका अपवाद नहीं है, क्योंकि इसके भी कुछ निश्चित सिद्धान्त या विशेषताएँ हैं। इसके प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है।

1. **कार्यों पर बल (Emphasis on Actions) -** फासीवाद एक क्रमबद्ध दर्शन नहीं है जैसा कि व्यक्तिवाद, आदर्शवाद और साम्यवाद हैं। फासीवादियों के न तो अपने कोई निश्चित सिद्धान्त थे और न ही कोई निश्चित कार्यक्रम । वस्तुतः यह अनेक विचारधाराओं का मिश्रण है जिसे फासीवादी नेताओं ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समय और परिस्थितियों के अनुसार प्रयोग किया है। असल में तो ये सैद्धान्तिक वाद-विवाद की उलझन से दूर ही रहते हैं, इसीलिए ये किसी निश्चित सिद्धान्त एवं निश्चित कार्यक्रम में विश्वास नहीं रखते हैं। इसी कारण फासीवाद का आधार सिद्धान्त नहीं, बल्कि कार्य हैं। इस विषय में मुसोलिनी ने स्पष्ट रूप से कहा है, "हमारा कार्यक्रम सरल है।... हम इटली पर शासन करना चाहते हैं।... औपचारिक सिद्धान्त लोहे और टीन की हवकड़ियों हैं। मेरा कार्यक्रम बात नहीं, कार्य है। फासीवादी इटली की राजनीति के बंजारे (जिप्सी) हैं जो किन्हीं निश्चित सिद्धान्तों से बंधे हुए नहीं हैं। इटली की जनता के कल्याण को एकमात्र ध्येय मानकर, वे शाश्वत गति से आगे बढ़ते रहते हैं।"

2. **फासीवादी राज्य एक साध्य है** (Fascist State is an End) - फासीवादी विचारधारा के तहत राज्य को साध्य और व्यक्ति को इसकी पूर्ति का एक साधन माना जाता है। इस विचारधारा के अन्तर्गत व्यक्ति राज्य रूपी मशीन का एक ऐसा पुर्जा है, जिसका एकमात्र कर्त्तव्य राज्य के सम्मुख नतमस्तक होकर उसके प्रति पूर्ण श्रद्धा रखना है। इस विचारधारा के तहत राज्य सर्वशक्तिमान है और इसका संचालन करने वाला शासक राज्य का प्रतिरूप है। **मुसोलिनी** ने ऐसे सर्वशक्तिमान राज्य का चित्रण करते हुए लिखा है, "विश्व की कोई भी मानवीय अथवा आध्यात्मिक वस्तु राज्य के बाहर नहीं हो सकती है और यदि है, तो उसका कोई महत्व नहीं होता है। सब कुछ राज्य के अन्दर है; राज्य के बाहर और राज्य के विरुद्ध कुछ भी नहीं है।" इसीलिए फासीवाद राज्य को व्यक्ति के जीवन में हस्तक्षेप करने का पूरा-पूरा अधिकार है।

3. **उदारवादी लोकतन्त्र का विरोध** (Opposition to Liberal Democracy)- फासीवाद लोकतन्त्र और उदारवाद का कट्टर विरोधी है। फासीवादी विचारक सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से उदारवादी लोकतन्त्र को अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनुपयुक्त तथा अवांछनीय समझते हैं, क्योंकि यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, समानता तथा संसदीय शासन-व्यवस्था की पोषक है, जब कि ये इन धारणाओं का जमकर विरोध करते हैं। फासीवादी लोक सम्प्रभुता (Popular Sovereignty) को एक मिथ्या धारणा मानते हैं। ये लोकतन्त्र की तुलना शव से करते हैं और संसदों को 'गप-शप की दुकानें' (talking shops) कहते हैं और बहुमत के शासन को 'उलूकों की व्यवस्था' की संज्ञा देते हैं। इनके मतानुसार लोकतन्त्र में जनता को यह भ्रम रहता है कि वह वास्तविक शासक है, जब कि वास्तविकता यह है कि सत्ता उन लोगों के हाथ में रहती है, जो जनता को अपनी वाक्पटुता से बेवकूफ बनाते हैं। फासीवादियों का मत है कि जनता अज्ञानी, अविवेकी, अन्ध-विश्वासी और भावना-प्रधान होती है, इसलिए वह राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान नहीं कर सकती है, किन्तु विशाल जनसंख्या में सदैव ही कुछ व्यक्ति ऐसे योग्य, निष्ठावान एवं कार्यकुशल होते हैं जो राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं और जो राष्ट्र के हित में कार्य करते हैं। अतः इन्हीं व्यक्तियों को शासन करने के लिए अधिकृत किया जाना आवश्यक है। इस तरह फासीवादी नेता कार्लाइल की इस युक्ति को सही मानते हैं "मूर्ख लोगों का यह चिरस्वायी विशेषाधिकार होता है कि वे बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा शासित हों।" इस तरह फासीवादी कुलीन लोगों द्वारा संचालित शासन-व्यवस्था का समर्थन करते हैं।

4. **तर्क और बुद्धि का विरोध** (Opposition to Reason and Wisdom)-फासीवादी विचारधारा व्यक्ति को विवेकशील,

तार्किक एवं बौद्धिक प्राणी नहीं मानती है, बल्कि एक ऐसा प्राणी मानती है जो अपने कार्य बुद्धि के स्थान पर अन्तःप्रेरणा, अन्धश्रद्धा और भावनाओं से प्रेरित होकर करता है। फासीवादी विचारधारा बुद्धिवादी दर्शन को विलासिता मानती है और इसीलिए बुद्धि एवं तर्क के स्थान पर यह श्रद्धा और विश्वास को प्राथमिकता देती है। मुसोलिनी कहा करता था कि तर्क एक साधन हो सकता है, किन्तु यह जनता की प्रेरक शक्ति नहीं बन सकता है। वह इटली की जनता को राज्य का अन्धा भक्त बनाये रखने के लिए दो नारे देता है। प्रथम, मुसोलिनी सदैव सही होता है और द्वितीय, उसके आदेशों पर उसे विश्वास करना चाहिए और इनका पालन करने हेतु युद्ध तक को तैयार रहना चाहिए। फासीवादियों की धारणा है कि अपने जीवन को पूर्ण तथा सुखमय बनाने के लिए व्यक्ति को कुछ ऐसे आदशों के प्रति निष्ठावान होना पड़ता है जो सामान्यतया तर्क की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं।

**5. व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का विरोध** (Opposition to Individual Freedom)-फासीवादी व्यक्ति को किसी भी प्रकार की स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करते हैं। ये हीगल एवं नीत्यो की विचारधारा का अनुसरण करते हैं और कहते हैं कि स्वतन्त्रता मानव के लिए स्वाभाविक वस्तु नहीं है, बल्कि यह राज्य द्वारा प्रदान की गवी एक रियायत मात्र है। वे कहते हैं कि व्यक्ति का हित राज्य के हित से अलग नहीं है, बल्कि राज्य के हित में ही व्यक्ति का हित निहित है, इसीलिए व्यक्ति द्वारा स्वयं को राज्य के प्रति समर्पित किये जाने से उसकी स्वतन्त्रता में किसी तरह की कमी नहीं आती, बल्कि इसमें वृद्धि ही होती है। फासीवादी कहते हैं कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता राज्य की शक्ति पर निर्भर करती है।

**6. साम्यवाद का विरोध** (Opposition to Communism)- फासीवादी विचारधारा समाजवाद का विरोध करती है, इसलिए यह साम्यवाद के वर्ग-संघर्ष, इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या तया अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करती है। न ही यह साम्यवाद की इस मान्यता को स्वीकार करती है कि मानव का सम्पूर्ण जीवन आर्थिक परिस्थितियों द्वारा संचालित होता है (फासीवादी कहते हैं कि धर्म, देश-भक्ति, पवित्रता एवं वीर-पूजा मानव जीवन के अधिक महत्त्वपूर्ण आदर्श होते हैं, इसीलिए ये साम्यवाद को निरा भौतिकवादी दर्शन बताकर, इसकी आलोचना करते हैं। मुसोलिनी के अपने शब्दों में, "आर्थिक समृद्धि मनुष्यों को उन पशुओं के समान बना देगी जिन्हें केवल अपने पेट अच्छी तरह भरने की चिन्ता रहती है और इस तरह मानव जाति का अस्तित्त्व केवल भौतिक बनकर रह जायेगा।" इसके अतिरिक्त, फासीवादी कहते हैं कि राष्ट्र के हित की दृष्टि से पूंजीपतियों एवं श्रमिकों के मध्य सहयोग होना जरूरी है। इनके योगदान को सुनिश्चित करने के लिए, ये पूँजीपतियों को राज्य के नियन्त्रण में रखते हैं जिससे कि श्रमिक वर्ग उचित पारिश्रमिक प्राप्त कर सके और साथ ही ये मजदूरों को हड़ताल के अधिकार से भी वंचित रखते हैं।

**7. परम्पराओं का समर्थक** (Supporter of Traditions)- फासीवादी विचारधारा मैजिनी और ट्रीटश्के के परम्परावाद से बहुत प्रभावित रही है। यद्यपि सत्ता संभालने से पूर्व मुसोलिनी परम्पराओं का विरोध करता या और एक नितान्त नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहता था, किन्तु सत्ता प्राप्त करने के बाद उसका दृष्टिकोण बदल गया। अब उसे ऐसा अनुभव होने लगा था कि गौरवपूर्ण रोमन साम्राज्य तथा राजतन्त्र की परम्पराएँ सत्ता को स्थायी बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं। इसीलिए अब वह रोमन साम्राज्य के गौरवपूर्ण अतीत का प्रचार करने लगा। उसने इटली की जनता को याद दिलाया कि उसे इटली को एक गौरवशाली राष्ट्र बनाने के लिए प्रयत्न करना है। फासीवादियों का अटल विश्वास है कि इटली की गौरवपूर्ण परम्पराएँ उसे एक शक्तिशाली राष्ट्र में विकसित कर सकती हैं क्योंकि परम्पराएँ जनता में उत्साह उत्पन्न करती हैं। मुसोलिनी इटलीवासियों को यह भी कहता है कि वे आर्यों के वंशज हैं और इस तरह वे विश्व की एक सर्वश्रेष्ठ जाति से सम्बन्ध रखते हैं और एक सर्वश्रेष्ठ जाति होने के नाते वे अन्य जातियों पर शासन करने में समर्थ हैं।

**8. उग्र राष्ट्रवाद का समर्थक** (Supporter of Extreme Nationalism) - फासीवाद मूल रूप से राष्ट्रवाद की भावना पर आधारित विचारधारा है, इसीलिए फासीवादी राज्य एवं राष्ट्र को एक मानते हैं। उनकी भाषा में राज्य का अर्थ है-राष्ट्र, इसीलिए ये राष्ट्रवाद को अति महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। इस तरह ये उग्र राष्ट्रवाद के उपासक बन जाते हैं। ये राष्ट्र एवं राज्य के आगे कुछ भी नहीं देख पाते हैं। इनके अनुसार राष्ट्र एक अन्तिम सत्य है और राष्ट्रीयहित सर्वोपरि एवं स्वयं-साध्य हैं। वे इस बात पर बल देते हैं कि राष्ट्र से पृथक् मनुष्य का कोई अस्तित्त्व ही नहीं होता है। इसलिए उसका परम कर्त्तव्य होता है, राष्ट्र की सेवा करना। मुसोलिनी के शब्दों में, "राज्य (अर्थात् राष्ट्र) एक आध्यात्मिक एवं नैतिक संगठन है-एक ऐसा संगठन जिसका उद्भव और विकास परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है।" राष्ट्र के प्रति अपने इसी दृष्टिकोण के कारण फासीवादी अन्तर्राष्ट्रवाद में

विश्वास नहीं रखते हैं। इनके मतानुसार एक राष्ट्र का हित दूसरे राष्ट्र के हित से अलग होता है। इसीलिए प्रत्येक राष्ट्र को अपने हित की पूर्ति करनी चाहिए, भले ही इससे दूसरे राष्ट्रों के हितों को नुकसान होता हो।

**9. साम्राज्यवाद का समर्थक** (Supporter of Imperialism) - फासीवाद राज्य को एक सर्वशक्तिमान संस्था मानता है, इसलिए यह साम्राज्यवाद का समर्थक है। फासीवाद के जन्म-दाता मुसोलिनी के मतानुसार, "साम्राज्यवाद जीवन का एक शाश्वत और अपरिवर्तनीय नियम है।" क्योंकि इससे राष्ट्र के नागरिकों की आत्माएँ परिष्कृत होती हैं। वह कहता है कि साम्राज्यवाद शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र का जन्मसिद्ध अधिकार है। अतः यदि एक अर्ध-विकसित राष्ट्र अपने प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग नहीं कर पाता है, तो विकसित और शक्तिशाली राष्ट्र का यह नैतिक कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उसके संसाधनों का उपयोग करें। फासीवादी मानते हैं कि अगर कोई राष्ट्र जीवित रहना चाहता है, तो उसे सदैव विस्तारवादी नीति का सहारा लेना चाहिए। ये इटली का विस्तार करना चाहते थे और यह कार्य साम्राज्यवादी नीति अपनाये बिना नहीं हो सकता था, इसीलिए इन्होंने साम्राज्यवाद का समर्थन किया। इस विषय में मुसोलिनी का कहना था, "इटली का विस्तार जीवन-मृत्यु का प्रश्न है। इटली का विस्तार होना चाहिए या इसे मर जाना चाहिए।"

**10. युद्ध में विश्वास (Faith in War)** - फासीवादी राज्य के विस्तार के लिए युद्ध को आवश्यक मानते हैं। वे कहते हैं कि युद्ध के द्वारा राज्य को निरन्तर अपना विस्तार करते रहना चाहिए क्योंकि यदि वह ऐसा नहीं करेगा, तो वह समाप्त हो जायेगा। फासीवादियों के अनुसार जो लोग शान्ति की बात करते हैं, वे डरपोक होते हैं। इनके मतानुसार विश्व-शान्ति एक ऐसे तालाब के समान है, जहाँ पानी ठहरकर गन्दा हो जाता है। युद्ध की महत्ता पर बल देते हुए वे कहते हैं कि युद्ध के बिना कोई भी जाति, समाज या राज्य प्रगति नहीं कर सकता है। अतः युद्ध नितान्त स्वाभाविक है और युद्ध में ही मानव जीवन की पूर्णता है। युद्ध की महिमा का बखान करते हुए मुसोलिनी ने लिखा है, "अकेले युद्ध ही मानव शक्ति को इसकी ऊँचाइयों तक पहुँचाता है और उन लोगों के ऊपर महानता की मोहर लगाता है जो इसका सामना करने का साहस रखते हैं।" एक अन्य स्थान पर वह लिखता है, "पुरुष के जीवन में युद्ध का वही स्थान है जो नारी के जीवन में मातृत्व का होता है।" एक सर्वाधिकारवादी राज्य और निरंकुश तानाशाही का समर्थन करने वाली विचारधारा द्वारा युद्ध का समर्थन किया जाना सर्वथा स्वाभाविक है।

**11. मानवीय समानता में अविश्वास** (No Faith in Human Equality)- फासीवादी विचारधारा मानवीय स्वतन्त्रता की तरह मानवीय समानता में भी विश्वास नहीं रखती है। इसके अनुसार मानव जीवन का मूल आधार समानता नहीं, बल्कि असमानता है। ये कहते हैं कि प्रकृति ने ही योग्यता एवं शक्ति के आधार पर मनुष्यों में भेदभाव किया है, इसीलिए सभी व्यक्ति योग्यता एवं शक्ति की दृष्टि से समान नहीं हैं। फासीवादी विचारधारा जीवन के सभी क्षेत्रों में असमानता का प्रतिपादन करती है। इसके अनुसार पुरुष स्त्री से श्रेष्ठ होता है और सैनिक, असैनिक से। इसी प्रकार फासीवादी दल का सदस्य अन्य सामान्य व्यक्तियों से और युद्ध में विजयी राष्ट्र पराजित राष्ट्र से श्रेष्ठ होता है। असमानता की इसी धारणा के आधार पर यह विचारधारा लोकतन्त्र का विरोध और कुलीनतन्त्र का समर्थन करती है क्योंकि कुलीनजन आमजन से श्रेष्ठ होते हैं।

**12. धर्म विरोधी नहीं (Not Opposed to Religion) –**सन् 1921 से पहले फासीवादी दल ईसाई धर्म और धार्मिक स्थलों को समूल नष्ट करना चाहता था, किन्तु अब उसे ग्रह अनुभव होने लगा था कि इटली की जनता पर कैथोलिक चर्च का इतना अधिक प्रभाव है कि इसे समाप्त नहीं किया जा सकता है। फासीवादी यह भी अनुभव करते थे कि अपने प्रभाव में वृद्धि करने के लिए वे कैथोलिक धर्माधिकारियों की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। फासीवादी नेता यह भी अनुभव करते थे कि उदारवाद का विरोध करने में रोमन चर्च उनकी कुछ सहायता कर सकता है क्योंकि वह भी उदारवाद-विरोधी था। ऐसी स्थिति में 1929 में मुसोलिनी ने पोप के साथ एक सन्धि की जिसे 'वेटिकन-इटेलियन अकॉर्ड' (Vatican - Italian accord) के नाम से जाना जाता है। इस सन्धि के अन्तर्गत पोप ने फासीवादी सरकार को इटली की सरकार के रूप में मान्यता प्रदान की तथा मुसोलिनी ने वेटिकन प्रदेश पर पोप की सत्ता को स्वीकार कर लिया। इस सन्धि की अन्य शर्तों के अनुसार यह तय हुआ कि पोप कैथोलिक पादरियों को राजनीति में भाग लेने से मना करेगा ओर इटली के राजकीय स्कूलों में धार्मिक शिक्षा जारी रहेगी। इस तरह स्पष्ट है कि धर्म के प्रति फासीवादियों का कोई निश्चित दृष्टिकोण नहीं था, किन्तु अवसरवादी होने के कारण वे राजनीतिक लाभ के लिए धर्म का प्रयोग करने में पीछे नहीं रहे।

**13. फासीवादी दल राज्य की अन्तः चेतना (Fa**scist Party as the Conscience of State) - फासीवाद एक

सर्वाधिकारवादी (totalitarian) विचारधारा है जिसके अन्तर्गत राज्य को सर्वशक्तिमान संस्था माना जाता है और व्यक्ति को किसी भी प्रकार की स्वतन्त्रता प्रदान न करते हुए राज्य के अधीन रखा जाता है। एक सर्वाधिकारवादी विचारधारा होने के नाते फासीवाद सैद्धान्तिक रूप से एक ही राजनीतिक दल के अस्तित्त्व को स्वीकार करता है, और वह दल है फासीवादी दल। यह दल राज्य का मुख्य अंग था और इसका राज्य की सत्ता पर एकाधिकार था। इतना ही नहीं, इस विचारधारा के अन्तर्गत दल को राज्य की अन्तः चेतना माना जाता है। जेन्टाइल के शब्दों में, "दल राज्य की अन्तः चेतना है।" वर्तमान साम्यवादी चीन की तरह, इटली में फासीवादी दल के अलावा किसी राजनीतिक दल की स्थापना नहीं की जा सकती थी। फासीवादी दल की सदस्यता बहुत अधिक सीमित थी और दल के आम सदस्यों का कर्त्तव्य इस दल के नेता मुसोलिनी की आज्ञा का पालन करना था।

**14. निगमात्मक राज्य (Corporate State)** - फासीवाद आर्थिक क्षेत्र में पूँजीवादी और समाजवादी अर्थ व्यवस्थाओं के मध्य का मार्ग अपनाता है। वह न तो व्यक्तिवादियों की तरह आर्थिक क्षेत्र में मनुष्य को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करता है और न ही समाजवादियों की तरह राज्य-नियन्त्रित अर्थव्यवस्था कायम करना चाहता है। मुसोलिनी के आर्थिक विचारों पर फ्राँस के संघवादी आन्दोलन (Syndicalist movement) का बहुत प्रभाव पड़ा था। इसलिए वह फासीवादी राज्य को 'संघ राज्य' कहता है और इस राज्य की आर्थिक व्यवस्था में उद्योगपतियों एवं श्रमिकों के हितों में ताल-मेल बिठाने का प्रयत्न करता है। फासीवादी राज्य की अर्थव्यवस्था को दो भागों में बांटा जा सकता है- संघ व्यवस्था (Syndicates) तथा निगम (Corporation) ।

प्रत्येक व्यवसाय के लिए प्रत्येक जिले में दो संघ (Syndicate) रखे गये थे, एक सम्बन्धित व्यवसाय के मालिकों का तथा दूसरा श्रमिकों का। इन स्थानीय व्यवसायों को राष्ट्रीय संघों से और राष्ट्रीय सघों को महासंघों (Confederations) से सम्बद्ध किया गया था। पहले इन महासंघों की संख्या 9 थी जो बाद में बढ़कर 13 हो गयी थी। इन सिण्डीकेटों के अलावा 5 जनवरी, 1934 को सरकार ने सभी व्यवसायों से सम्बन्धित निगमों (Corporations) की स्थापना की। इन निगमों की संख्या 22 थी। प्रत्येक निगम में तीन प्रकार के सदस्य होते थे - श्रमिकों के प्रतिनिधि, उद्योगपतियों के प्रतिनिधि और राज्य के प्रतिनिधि । श्रमिकों और उद्योगपतियों के प्रतिनिधियों की नियुक्ति यथार्थ में राज्य द्वारा ही होती थी। निगम-पद्धति की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि प्रत्येक निगम को अपने निर्णयों पर सरकार की अनुमति लेनी आवश्यक थी। इटली की यह आर्थिक व्यवस्था फासीवादी राज्य के पूरी तरह अधीन थी क्योंकि सभी 22 निगमों की राष्ट्रीय परिषद की केन्द्रीय समिति में न केवल फासीवादी दल का महामन्त्री तथा राज्य के मन्त्री शामिल थे, बल्कि इनका सभापति/अध्यक्ष स्वयं मुसोलिनी ही था।

### फासीवाद की आलोचना/ फासीवाद के दोष (Criticism/Demerits of Fascism)

फासीवाद के सिद्धान्तों की जो व्याख्या ऊपर की पंक्तियों में की गयी है, उसी से इस विचारधारा के दोष स्वतः स्पष्ट हो जाते हैं। इसका शायद ही कोई ऐसा सिद्धान्त है जो दोष-रहित हो या जिसे न्यायोचित ठहराया जा सके। फिर भी, यहाँ इसके दोषों का संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक हो जाता है। फोसीवाद के प्रमुख दोष इस प्रकार हैं-

1. फासीवाद कोई क्रमबद्ध दर्शत नहीं है और यदि इसे दर्शन मान भी लिया जाये, तब भी हम इस बात से इंकार नहीं कर सकते हैं कि यह पूरी तरह से एक अवसरवादी विचारधारा है और इसीलिए इसमें अनेक अनिश्चित एवं परस्पर विरोधी बातों का समोवश है। इसमें अनेक ऐसे विचार देखने को मिलते हैं, जिन्हें परिस्थितियों को ध्यान में रख कर ग्रहण किया गया है। कहने की आवश्यकता न होगी कि ऐसे विचारों के आधार पर किसी सुस्पष्ट एवं क्रमबद्ध दर्शन का सृजन नहीं किया जा सकता है।

2. फासीवाद का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह राज्य को साध्य और व्यक्ति को साधन मानता है। यदि यह विचारधारा राज्य को उचित महत्त्व देती, तब तो कोई आपत्तिजनक बात न होती, किन्तु यह तो राज्य को एक आध्यात्मिक संस्था बना देती है, एक ऐसी संस्था जिसके लिए व्यक्ति को सब कुछ अर्पित कर देना चाहिए। वस्तुतः राज्य को एक रहस्यात्मक देवता (Mysterious God) का रूप प्रदान करते हुए उसे साध्य बना देना अत्यन्त आपत्तिजनक है। राज्य एक ऐसी मानवीय संस्था है जिसका निर्माण व्यक्ति ने अपनी सुख-सुविधा के लिए किया है, इसलिए यह साधन और व्यक्ति साध्य है। वस्तुतः मानव के बिना राज्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

3. फासीवाद व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का कट्टर दुश्मन है क्योंकि यह स्वतन्त्रता को व्यक्ति का एक अधिकार नहीं, बल्कि राज्य के

प्रति एक कर्त्तव्य मानता है। इसके अन्तर्गत राज्य की आज्ञा पालन में ही व्यक्ति की स्वतन्त्रता निहित है। यदि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को राज्य की इच्छा पर छोड़ दिया जाये, तब तो यह निश्चित रूप से समाप्त हो जायेगी और इसके समाप्त होने पर व्यक्ति की स्थिति पशु से भी बदतर हो जायेगी, क्योंकि वह इसके अभाव में अपने मानवीय गुणों को खो बैठेगा तथा उसकी बुद्धि और आत्मा कुण्ठित हो जायेगी। वस्तुतः मनुष्य के मानसिक विकास के लिए स्वतन्त्रता उतनी ही आवश्यक है जितने कि जीवित रहने के लिए हवा और पानी आवश्यक हैं।

4. फासीवाद समानता के आदर्श को मिट्टी में मिला देता है। यह सही है कि प्रकृति ने बल, बुद्धि और प्रतिभा की दृष्टि से मनुष्यों को असमान बनाया है अर्थात् असमानता प्राकृतिक है, किन्तु सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में व्यक्ति समान होते हैं और इनको समान ही समझा जाना चाहिए। कोई भी सभ्य व्यक्ति इस बात से इंकार नहीं कर सकता कि राज्य द्वारा सभी व्यक्तियों को अपने विकास और सुख-समृद्धि के लिए समान अवतर प्रदान किये जाने चाहिए, लेकिन फासीवाद ने असमानता को प्रोत्साहन दिया है और उन्हीं व्यक्तियों को योग्य माना है जो छल, कपट और हिंसा से सत्ता प्राप्त कर लेते हैं।

5. फासीवाद के अन्तर्गत कला, साहित्य, दर्शन और विज्ञान का उत्थान नहीं हो सकता है। क्योंकि यह मानव जीवन के सभी पक्षों पर राज्य का नियन्त्रण स्थापित करता है। वस्तुतः कला, साहित्य, दर्शन और विज्ञान का विकास स्वतन्त्रता के वातावरण में ही हो सकता है जिसके लिए फासीवादी राज्य में कोई स्थान ही नहीं है। पूर्ण रूप से अनुशासित और राज्य-नियन्त्रित व्यवस्था में कला, साहित्य, दर्शन और विज्ञान मृत्यु को ही प्राप्त हो सकते हैं, विकसित कदापि नहीं हो सकते। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब राज्य ने इन पर प्रतिबन्ध लगाया है, इनका पतन ही हुआ है।

6. फासीवादी शक्ति को राज्य का स्थायी आधार मानने की भूल करते हैं। मानव जाति का अब तक का इतिहास तो यही बताता है कि भय और शक्ति पर आधारित राज्यों का अन्ततः पतन ही हुआ है। शक्ति एक अस्थायी तत्त्व है और इस नाते यह राज्य जैसी स्थायी संस्था का आधार कभी नहीं बन सकती है। प्रतिद्ध विद्वान रूसी का यही मत है कि शक्ति राज्य का स्थायी आधार कभी नहीं हो सकती है। इसी तरह ग्रीन ने भी शक्ति को राज्य के आधार के रूप में स्वीकार नहीं किया है। उसके शब्दों में, "राज्य का आधार शक्ति नहीं, इच्छा है।" यदि शक्ति राज्य का आधार हो सकती है तो शक्ति ही राज्य के विनाश का कारण भी बनती है। फासीवाद राज्य का जन्म शक्ति से हुआ था और शक्ति ने ही उसका नामो-निशान मिटाया।

7. फासीवाद का एक प्रमुख दोप है कि यह लोकतन्त्र का कट्टर विरोधी है और इसीलिए यह इसके स्थान पर अधिनायकवाद को कायम करने पर बल देता है। इतना ही नहीं, फासीवादी एक राजनीतिक दल और इसके एक ही नेता अर्थात् तानाशाह के शासन को उत्तम मानते हैं। लोकतन्त्र में कितने भी दोष क्यों न हों, तब भी इसे सर्वश्रेष्ठ शासन पद्धति माना जाता है। यही कारण है कि प्लेटो जैसा मनीषी भी लोकतन्त्र का व्यावहारिक विकल्प प्रस्तुत नहीं कर पाया। वस्तुतः लोकतन्त्र ही एक ऐसी शासन पद्धति है जिसमें स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व का विकास सम्भव होता है और व्यक्ति को अपने व्यक्तित्त्व के विकास करने का अवसर प्राप्त होता है। इस पर भी फासीवाद लोकतन्त्र को स्वीकार नहीं करता है।

8. फासीवाद की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि यह विश्व शान्ति और अन्तर्राष्ट्रवाद का विरोधी है। फासीवादियों ने विश्व शान्ति का मखौल उड़ाया है। ये विश्व शान्ति की बात करने वालों को कायर मानते हैं और यह भी कहते हैं कि विश्व शान्ति को कायम नहीं किया जा सकता है। कोई पागल व्यक्ति ही विश्व-शान्ति का मखौल उड़ा सकता है। विश्व शान्ति ही एक ऐसा आदर्श है जिसके अपनाने से जन कल्याण हो सकता है। इसी तरह फासीवादियों का यह कहना कि एक राष्ट्र के हित दूसरे राष्ट्रों से सर्वथा पृथक् होते हैं और इसीलिए अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की कोई भूमिका नहीं हो सकती है, को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है। आज तो लगभग सभी राज्य वैश्वीकरण की नीति को कार्य रूप देने में लगे हैं।

9. फासीवादी विचारधारा युद्ध एवं साम्राज्यवाद की समर्थक है। ये कहते हैं कि विना युद्ध के कोई जाति, समाज या राज्य प्रगति नहीं कर सकता है। इसी तरह यह विचारधारा इस वात पर भी बल देती है कि राज्य को विस्तारवादी नीतियों का अनुसरण करते रहना चाहिए। आज सम्पूर्ण विश्व युद्ध के परित्याग पर बल देता है क्योंकि हाइड्रोजन और कोबाल्ट बमों के इस युग में युद्ध मानव जाति की सामूहिक हत्या के अतिरिक्त कुछ और नहीं हो सकता है। इसी तरह राज्यों द्वारा साम्राज्यवादी नीतियों का अनुसरण करने से विश्व-शान्ति भंग होती है। अपने इस दोष के कारण ही अब साम्राज्य बीते युग की कहानी बन चुके हैं।

10. फासीवाद का एक अन्य दोष यह है कि इसमें धर्म और राजनीति का सम्मिश्रण किया गया है। वस्तुतः धर्म एक पृथक् वस्तु है और इसे राजनीति के साथ नहीं मिलाना चाहिए क्योंकि अगर धर्म को राजनीति के साथ संयुक्त कर दिया जाता है, तो इससे मनुष्य की राजनीतिक चेतना पर अंत्यन्त दुष्प्रभाव पड़ता है जो किसी भी प्रगतिशील समाज के लिए शुभ नहीं होता है। धर्म और राजनीति का मिश्रण एक रूढ़िवादिता ही है जिसे आज के समय में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि आज अनेक राज्य धर्म-निरपेक्षता के मार्ग पर अग्रसर हैं। वस्तुतः आज धर्म-निरपेक्षता एक प्रगतिशील समाज की पहचान बन गयी है।

**निष्कर्ष (Conclusion)-**निःसन्देह फासीवाद उन समस्त आदशों एवं सिद्धान्तों का कट्टर शत्रु है, जिन्होंने मनुष्य को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने में योगदान दिया है। यही कारण है कि इस विचारधारा का किसी भी तरह से समर्थन नहीं किया जा सकता है। यह विचारधारा जिस गति से इटली में फैली, अपने अन्तर्निहित दोषों के कारण, उसी गति से इसका अन्त भी हो गया। इसके बावजूद भी, हम इस तथ्य से इंकार नहीं कर सकते हैं कि इसमें कुछ अच्छाई भी है। इसकी एक मात्र अच्छाई यही है कि यह एकता, अनुशासन और देश-भक्ति आदि के आदशों पर बल देती है, जिनके बिना कोई राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता है।

## Q. 8. फासीवाद का अर्थ, स्रोत, विकास, सिद्धांत तथा विशेषताओं को बताइए।

**उत्तर:** उदारवाद का सही अर्थ (Correct Meaning of Liberalism)-उदारवाद को हम अंग्रेजी में 'लिबरलिज्म' (Liberalism) कहते हैं। अंग्रेजी भाषा का शब्द लिबरलिज्म लेटिन भाषा के शब्द 'लिबरलिस' (Liberalis) से निकला है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- स्वतन्त्र व्यक्ति (Freeman)। इस तरह उदारवाद का अर्थ हुआ वह विचारधारा है जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता का समर्थन करती है, जिससे व्यक्ति अपने व्यक्तित्त्व का विकास कर सके।

उदारवाद की कुछ प्रमुख **परिभाषाएं** यहाँ प्रस्तुत हैं-

**एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका** के अनुसार, "स्वतन्त्रता उदारवाद में प्रमुख तत्त्व है तथा उदारवाद की परिभाषा स्वतन्त्रता को सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक रूप से संगठित करने के परिणाम के रूप में की जा सकती है।"

**सारटोरी** के शब्दों में, "साधारण शब्दों में, उदारवाद व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, न्यायायिक सुरक्षा तथा संवैधानिक राज्य का सिद्धान्त और व्यवहार है।"

**हेलोवेल** के अनुसार, "उदारवाद, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र अर्थात् बौद्धिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक सभी क्षेत्रों में स्वतन्त्रता की मांग का साकार रूप है।"

'**बर्टेण्ड रसेल** के शब्दों में, "उदारवादी विचारधारा व्यवहार में जियो और जीने दो, सहनशीलता और स्वतन्त्रता जिस सीमा तक सार्वजनिक व्यवस्था अनुमति दे और राजनीतिक मामलों में हठधर्मिता की अनुपस्थिति की विचारधारा है।"

उपयुक्त परिभाषाओं के आधार में यह कहा जा सकता है कि **उदारवाद** एक ऐसी व्यापक विचारधारा है जो जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर बल देती है जिससे कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास हो सके इसी के साथ यह लोकतान्त्रिक शासन-व्यवस्था का समर्थन करती है क्योंकि इसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता और अधिकार सुरक्षित रहते हैं। व्यक्ति के अधिकार एवं स्वतन्त्रता को कायम रखने के लिए यह न्यायिक संरक्षण प्रदान करने का भी समर्थन करती है। इसके अनुसार राज्य व्यक्ति के जीवन में उसी सीमा तक हस्तक्षेप कर सकता है जिस सीमा तक यह व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन न करता हो।

### उदारवाद की प्रमुख विशेषताएं अथवा सिद्धान्त (Main Characteristics or Principles of Liberalism)

यद्यपि उदारवाद अनेक विचारधाराओं का मिश्रण है, फिर भी इसकी कुछ निश्चित विशेषताएं और निश्चित सिद्धान्त हैं। इसकी

कुछ प्रमुख विशेषताएं अथवा सिद्धान्त इस प्रकार हैं-

**1. मानवीय विवेक में आस्था (Faith in Human Reason)**-उदारवाद का मूल सिद्धान्त है-मानव की बुद्धि और विवेक में आस्था। मध्य युग में यूरोप के अनेक देशों में ईसाइयत ने मानव की बुद्धि को कठोर बन्धनों में जकड़ रखा था जिसके परिणामस्वरूप वह धर्म, ईश्वर एवं पोप को ही सब कुछ मानता था। किन्तु मध्य युग में हुए पुनर्जागरण ने इन समस्त बन्धनों को काट डाला और मनुष्य को अपने विवेक एवं बुद्धि द्वारा विश्व की संस्थाओं को समझने के लिए कहा। वस्तुतः पुनर्जागरण पारलौकिकवाद के विरुद्ध एक बौद्धिक आन्दोलन या जिसने जनता के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिये थे। 17वीं एवं 18वीं शताब्दी में जॉन लॉक और टामस पेन जैसे उदारवादी इस बात पर बल देते थे कि मनुष्य को ऐसे किसी भी सिद्धान्त, कानून या परम्परा को नहीं मानना चाहिए जिन्हें तर्क और बुद्धि के आधार पर उपयोगी सिद्ध न किया जा सके टामस पेन ने परम्पराओं को चुनौती देते हुए कहा था, "मेरा अपना मन ही मेरा चर्च है।" इस तरह उदारवाद अन्ध-भक्ति के स्थान पर मानव के तर्क और बुद्धि को महत्व देता है।

**2. इतिहास एवं परम्पराओं का विरोध** (Opposition of History and Traditions)-मध्य युग में अन्ध विश्वास, रूढ़ियों एवं परम्पराओं का बोलबाला था। उदारवाद इनके विरुद्ध एक विद्रोह बनकर उभरा। मध्य युग के उदारवादियों को इतिहास एवं परम्पराओं से कोई लगाव न था। इसीलिए ये पुरातन व्यवस्था को पूर्ण रूप से समाप्त करके नये आदर्शों पर आधारित नवीन समाज का निर्माण करना चाहते थे। फ्राँस के क्रान्तिकारियों ने यही किया था। इन्होंने अचानक एक झटके में परम्पराओं एवं रूढ़ियों को उखाड़ फेंका और नये सिरे से समाज का गठन किया। इसी तरह इंग्लैण्ड के उदारवादियों ने उपयोगितावाद के आधार पर सदियों से चली आ रही परम्पराओं को उखाड़ फेंका। वस्तुतः उदारवाद के प्रभाव के कारण ही इंग्लैण्ड, फ्रांस और अमेरिका में परिवर्तन आया था, किन्तु यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि उदारवाद हमेशा मौजूदा व्यवस्था का विरोध नहीं करता है। आज तो यह स्वयं एक रूढ़ि बन गया है।

**3. मानवीय स्वतन्त्रता का पोषक** (Supporter of Human Freedom)-समय बीतने के साथ-साथ उदारवाद ने कैसे भी रुप क्यों न धारण किये हों, लेकिन इस विचारधारा ने सदैव ही मानव की स्वतन्त्रता पर बल दिया है। असल में स्वतन्त्रता इसका प्राण है। स्वतन्त्रता और उदारवाद के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए लास्की ने लिखा है, "स्वतन्त्रता से उदारवादियों का अभिप्राय यह है कि मनुष्य के जीवन पर किसी स्वेच्छाचारी सत्ता का नियन्त्रण न हो और वह अपने विवेक के अनुसार कार्य करता हो।" इस तरह उदारवाद व्यावहारिक रूप में स्वतन्त्रतावाद ही है।

**4. धर्म निरपेक्षता में विश्वास** (Faith in Secularism)-उदारवाद धर्म-निरपेक्षता में अटूट विश्वास रखता है। मध्ययुग में जब व्यक्ति के जीवन पर चर्च का पूरा नियन्त्रण था तो उदारवादी विचारकों ने चर्च के विशेषाधिकारों के विरुद्ध आवाज बुलन्द की थी और व्यक्ति की धार्मिक स्वतन्त्रता पर बल दिया था। उदारवादियों की यह धारणा है कि धर्म और राजनीति एक-दूसरे से पृथक् हैं, इसीलिए राज्य को व्यक्ति के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उदारवाद के अनुसार धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है और इसीलिए इसका राज्य से कोई लेना-देना नहीं है। प्रसिद्ध उदारवादी विचारक लॉक ने व्यक्ति को धर्म के मामलों में स्वतन्त्र छोड़ने पर बल दिया है। वस्तुतः यूरोप में धर्म के नाम पर किये जा रहे अत्याचारों के विरोध में ही उदारवादियों ने धर्म-निरपेक्षता के सिद्धान्त में अपनी आस्था व्यक्त की है।

**5. व्यक्ति साध्य है और राज्य साधन (**Individual is End and State is Means)-उदारवादी विचारक व्यक्ति को साध्य और राज्य को साधन मानते हैं। वे कहते हैं कि राज्य सहित सभी संस्थाएं व समुदाय व्यक्ति के लिए बनी हैं, व्यक्ति इनके लिए नहीं बना। इनका कहना है कि किसी भी देश में व्यक्ति को राज्य का साधन नहीं बनाया जा सकता है। उदारवादी विचारक आदर्शवादियों की इस धारणा को बिल्कुल भी स्वीकार नहीं करते कि राज्य एक उत्त्वं नैतिक संस्था है, जिसकी आज्ञा का पालन व्यक्ति के हित में है। इसके विपरीत, ये कहते हैं कि कोई भी संस्था ऐसी नहीं हो सकती है जिसके नाम पर व्यक्ति के हितों को बलिदान किया जाये। ये इस बात पर जोर देते हैं कि राज्य और कानून उसके साधन हैं तथा इनका उद्देश्य व्यक्ति के विकास में योगदान देना है और यदि ये अपने इस उद्देश्य को पूरा नहीं करते, तो इनके अस्तित्त्व का औचित्य ही समाप्त हो जाता है।

**6. राज्य और समाज की यान्त्रिक प्रकृति (**Mechanical Nature of State and Society)-उदारवादी विचारकों की

धारणा के अनुसार राज्य और समाज दोनों की प्रकृति यान्त्रिक है। इनका निर्माण व्यक्ति ने अपनी सुख-सुविधा के लिए किया है, इसीलिए आवश्यकता पड़ने पर वह इनमें संशोधन वा परिवर्तन भी कर सकता है। इस दृष्टि से व्यक्ति राज्य एवं समाज से पहले है। ये कहते हैं कि राज्य या समाज में कोई सावयवी गुण नहीं है, इसीलिए इनका कोई ऐसा व्यक्तित्त्व नहीं होता जो व्यक्ति के व्यक्तित्त्व से पृथक् और श्रेष्ठ हो। इसी कारण राज्य तथा समाज का निर्माण करने वाले व्यक्तियों का जीवन ही राज्य और समाज का जीवन है तथा व्यक्ति के कल्याण में ही राज्य और समाज का कल्याण निहित है। उदारवादियों के मतानुसार व्यक्ति हर दृष्टि से स्वयं में पूर्ण है और इस नाते उस पर राज्य या समाज को कोई ऋण (obligation) नहीं होता है।

**7. राज्य कृत्रिम संस्था है (**State is an Artificial Institution)-उदारवादी चिन्तक आदर्शवादियों की तरह राज्य को ईश्वरीय या प्राकृतिक संस्था नहीं मानते हैं, बल्कि ये राज्य को एक कृत्रिम संस्था मानते हैं-एक ऐसी संस्था जिसका निर्माण व्यक्ति ने अपनी किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया है। अतः यदि राज्य व्यक्ति की इन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता, तो व्यक्ति को पूरा-पूरा अधिकार है कि वह इसके संगठन को आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सके।

**8. प्राकृतिक अधिकारों की धारणा में विश्वास (Fa**ith in the Concept of Natural Rights)-उदारवादी विचारक इस बात पर बल देते हैं कि व्यक्ति के कुछ जन्मसिद्ध और अनुल्लंघनीय अधिकार होते हैं। इन अधिकारों को ये प्राकृतिक अधिकारों की संज्ञा देते हैं। जॉन लॉक प्राकृतिक अधिकारों का प्रबल समर्थक है। उसके मतानुसार इनकी सृष्टि राज्य द्वारा नहीं की गयी है, क्योंकि ये राज्य की उत्पत्ति से पहले अस्तित्त्व में थे। लॉक ने जीवन के अधिकार, स्वतन्त्रता के अधिकार और सम्पत्ति के अधिकार को प्राकृतिक माना है। उसके मतानुसार ये तीनों अधिकार राज्य की उत्पत्ति से पहले भी व्यक्ति के पास थे और राज्य के उत्पन्न होने के बाद भी। अतः राज्य व्यक्ति के इन अधिकारों पर कोई प्रतिबंध नहीं लगा सकता है। अमेरिका में स्वतन्त्रता की घोषणा करने वाले और फ्राँस की क्रान्ति को अंजाम देने वाले व्यक्तियों को इन्हीं प्राकृतिक अधिकारों से प्रेरणा मिली थी।

**9. लोकतन्त्र का समर्थन (S**upport to Democracy)-लोकतन्त्र उदारवाद का अभिन्न अंग है। वस्तुतः उदारवाद का जन्म ही स्वेच्छाचारी शासन और जन्मजात विशेषाधिकारों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। इसीलिए प्रारम्भ से ही इसका जोर इस बात पर रहा है कि व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा का कारगर उपाय यह हो सकता है कि शासन-शक्ति जनता के हाथों में हो। उदारवादियों के राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त में ही लोक सम्प्रभुता का आदर्श निहित है। ये मानते हैं कि सभी मनुष्य स्वतन्त्र पैदा हुए हैं, इसलिए किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह को दूसरे व्यक्तियों पर, बिना उनकी सहमति के शासन करने का अधिकार नहीं है। क्योंकि उदारवादियों के अनुसार राज्य की उत्पत्ति, व्यक्तियों की सहमति पर आधारित संविदा (समझौते) से हुई है, इसलिए जनता की सहमति ही शासन का आधार हो सकती है। हालांकि बेन्बम एवं मिल जैसे उदारवादी संविदा सिद्धान्त का समर्थन नहीं करते हैं, फिर भी ये लोक सम्प्रभुता के उस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं, जो उदारवाद को एक आधार प्रदान करता है।

**10. स्वामी-मुक्त व्यक्ति की अवधारणा (C**oncept of Masterless Individual)-मध्यकालीन यूरोप अनेक प्रकार के बन्धनों में जकड़ा हुआ था। जीवन के किसी भी क्षेत्र में वह बन्धनों से मुक्त नहीं था। धार्मिक मामलों में व्यक्ति चर्च के अधीन था तो उसके सामाजिक-आर्थिक जीवन पर उसके स्वामी, अथवा सामन्त का नियन्त्रण था। समाज में व्यक्ति की जो भी स्थिति थी, वह उसे जन्म से ही मिलती थी और अपना समस्त जीवन वह उसी स्थिति में गुजारता था। वह चाहकर भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता था। उदारवादी सिद्धान्त एक नवीन प्रकार के व्यक्ति की कल्पना करता है। उदारवादी विचारकों की मान्यता थी कि व्यक्ति प्रकृति से ही स्वतन्त्र और पूर्ण है और इस नाते उसका कोई स्वामी नहीं हो सकता है। वस्तुतः वह स्वयं ही अपना स्वामी है। उदारवादियों का विचार है कि अपने आध्यात्मिक और भौतिक विकास की जिम्मेदारी स्वयं व्यक्ति की है, इसीलिए कोई दूसरा व्यक्ति उसका विकास नहीं कर सकता है।

**11. संवैधानिक शासन (C**onstitutional Government)-उदारवाद व्यक्ति की स्वतन्त्रता का प्रबल समर्थक है, इसीलिए यह निरंकुश शासन का विरोधी है। वस्तुतः उदारवाद का उदय ही निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ है। उदारवाद संवैधानिक शासन या सीमित शक्तियों वाले शासन का समर्थन करता है। उदारवादी विचारकों की धारणा है कि राज्य को व्यक्ति के कार्यों में कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए। इनके अनुसार सर्वोत्तम सरकार वही है जो कम से कम शासन करती हो। यदि सरकार अपनी शक्तियों का दुरूपयोग करती है, तो ये व्यक्ति को ऐसी सरकार को उखाड़ फेंकने का अधिकार

देते हैं। प्रसिद्ध उदारवादी विचारक जॉन लॉक ने इंग्लैण्ड की 1688 की क्रान्ति का समर्थन किया था।

**12. अन्तर्राष्ट्रीयवाद और विश्व शान्ति में विश्वास** (Faith in Internationalism and World Peace)-उदारवाद विश्व-शान्ति और विश्व-बन्धुत्व का समर्थन करता है। यह 'जियो और जीने दो' के आदर्श में विश्वास रखता है। उदारवादियों के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र को प्रगति करनी चाहिए और दूसरे राष्ट्रों की प्रगति के मार्ग में बाधा नहीं डालनी चाहिए। इसी के साथ-साथ प्रत्येक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र की एकता और अखण्डता का सम्मान करते हुए उसके विरुद्ध शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के साथ कोई विवाद है, तो ऐसे विवाद का हल शान्तिपूर्ण साधनों के द्वारा ही किया जाना चाहिए, युद्ध के द्वारा नहीं।

### उदारवाद की आलोचना (Criticism of Liberalism)

यद्यपि देखने और सुनने में उदारवाद एक श्रेष्ठ राजनीतिक विचारधारा प्रतीत होती है, किन्तु इसमें कई विसंगतियाँ हैं, जिनके आधार पर इसकी अनेक आलोचनाएं हुई हैं। विद्वानों ने निम्नलिखित आधारों पर इसकी आलोचना की गई है-

**1. अस्पष्ट अवधारणा** (Ambiguous Concept)-आलोचकों का कहना है कि उदारवाद की विचारधारा स्पष्ट नहीं है, क्योंकि इसके सिद्धान्तों पर सभी उदारवादी सहमत नहीं हैं। यही कारण है कि इसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह विचारधारा अलग-अलग शताब्दी में मौजूद अलग-अलग विद्वानों के विचारों एवं आदर्शों का मिश्रण है। यही कारण है कि उदारवाद एक समय में जिन विचारों का समर्थन करता है, दूसरे समय में यह उन्हीं विचारों का खण्डन कर देता है। उदारवाद में विद्यमान यह विरोधाभास ही इस विचारधारा की अस्पष्टता के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है।

**2. व्यक्ति समाज से पृथक् नहीं है** (Individual is not distinct from Society)-उदारवादी विचारधारा समाज को स्वतन्त्र व्यक्तियों का समूह मानती है। इनकी यह धारणा सत्य नहीं है क्योंकि व्यक्ति न तो समाज से पृथक् है और न ही समाज के बाहर। इस विषय में सी. डी. बर्न का मानना है कि, "जातीयता, सम्बन्धियों तया परम्पराओं से रहित आणविक व्यक्ति केवल कल्पना मात्र है।" अपने सामाजिक सम्बन्धों के दायरे में रहते हुए व्यक्ति समस्त कमों एवं लक्षणों का सूत्र है; इन सम्बन्धों के बाहर वह मात्र शून्य है। इसीलिए सामाजिक सम्बन्धों के बाहर हम व्यक्ति की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

**3. स्वतन्त्रता की अवधारणा दोषपूर्ण** (Wrong Conception of Liberty)-उदारवाद की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि उदारवादियों की स्वतन्त्रता की अवधारणा गलत है, क्योंकि ये राज्य के कानून और स्वतन्त्रता को परस्पर विरोधी मानते हैं। इनकी यह धारणा कि जैसे-जैसे राज्य का कार्य क्षेत्र बढ़ता जाता है, उसी के अनुपात में व्यक्ति की स्वतन्त्रता सीमित होती जाती है, ठीक नहीं है; क्योंकि स्वतन्त्रता का अर्थ कानूनों या बन्धनों का अभाव नहीं है। वस्तुतः कानूनों का पालन करने में ही सच्ची स्वतन्त्रता निहित है। स्वतन्त्रता को सार्थक बनाने के लिए राज्य अथवा समाज के बन्धनों का होना अनिवार्य है, क्योंकि इनके अभाव में स्वतन्त्रता स्वछन्दता में बदल जाती है।

**4. व्यक्ति अपने हितों का एकमात्र निर्णायक नहीं (I**ndividual is not the role judge of his Interests)-उदारवादी विचारकों की धारणा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों को अच्छी तरह समझता है और वह इन्हीं के अनुसार आचरण करता है। यह विचार कुछ हद तक सही है, किन्तु अधिकांश बातें ऐसी हैं जिनमें राज्य और समाज के निर्णय ही उसके हित में होते हैं। कभी-कभी अज्ञानतावश व्यक्ति गलत निर्णय ले लेता है, इसीलिए उसे निर्णय लेने के मामले में स्वतन्त्र नहीं छोड़ा जा सकता है। वस्तुतः निर्णय लेने की शक्ति ज्ञान पर निर्भर करती है और प्रत्येक व्यक्ति को सभी बातों के बारे में सही ज्ञान नहीं होता है, इसीलिए व्यक्ति के विषय में निर्णय लेने का अधिकार राज्य अथवा समाज को दिया जा सकता है।

**5. मानव समाज पर प्राकृतिक नियम लागू नहीं होते (**Natural Laws are not applicable on Human Society)-उदारवाद का एक दोष यह है कि इसके अन्तर्गत प्रकृति के नियमों को मानव समाज पर लागू करने का प्रयास किया गया है। स्पेन्सर ने 'जीवन के लिए संघर्ष' और 'योग्यतम के जीवित रहने के अधिकार' के प्राकृतिक नियमों को मानव समाज पर लागू कर दिया है। योग्यतम के जीवित रहने का नियम पशु जगत पर लागू होता हैं, मानव जगत पर नहीं, क्योंकि विकास की दृष्टि से मानव पशु से बहुत आगे है। मनुष्य के पास बुद्धि है जिसके कारण वह प्रकृति को अपने अनुकूल ढालने का प्रयास करता है।

वह स्वयं उसके अनुकूल नहीं ढलता है।

**6. प्राकृतिक अधिकारों की धारणा गलत (**Wrong Conception of Natural Rights)-जॉन लॉक जैसे उदारवादी विचारकों का मत है कि राज्य के निर्माण से पूर्व की 'प्राकृतिक अवस्था' में मनुष्य के पास तीन प्राकृतिक अधिकार-जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति, प्राप्त थे और वह इनका उपभोग किया करता था, सही नहीं है। बिना राज्य के किन्हीं अधिकारों की कल्पना ही नहीं की जा सकती है, क्योंकि अधिकारों के पीछे राज्य की शक्ति होती है और इस शक्ति के कारण ही व्यक्ति के अधिकार सुरक्षित रहते हैं। यही कारण है कि कॉण्ट, हीगल, ग्रीन तथा लास्की आदि विद्वान प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते हैं।

**7. इतिहास और परम्पराओं की उपेक्षा** (Neglect of History and Traditions)-उदारवादी विचारधारा की इस आधार पर भी आलोचना की गयी है कि इसमें इतिहास और परम्पराओं की उपेक्षा की गयी है। एडमण्ड बर्क के मतानुसार उदारवादी विचारकों की सबसे बड़ी भूल यह है कि इन्होंने इतिहास और परम्पराओं के महत्व को अस्वीकार किया है। वह कहता है कि सामाजिक-राजनीतिक संस्थाएं ऐतिहासिक विकास का परिणाम होती हैं और ये अपने में अनेक पीढ़ियों का अनुभव समाये हुए होती हैं। ये किसी जाति की प्रतिभा एवं बुद्धि का मूत रूप होती हैं, इसीलिए इनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। वह कहता है कि अतीत से सम्बन्ध-विच्छेद करना न तो सम्भव है और न ही वांछनीय।

**8. पूँजीवादी व्यवस्था का पोषक** (Supporter of Capitalist System)-मार्क्सवादी विचारकों ने उदारवाद की कटु आलोचना की है। इन विद्वानों की मान्यता है कि उदारवाद पूँजीवादी व्यवस्था का पोषक है और यह केवल पूँजीपतियों के हितों की पूर्ति करने वाला है क्योंकि मुक्त अर्थव्यवस्था, खुली प्रतियोगिता और मुक्त व्यापार पूँजीपति वर्ग के लिए ही लाभकारी है, श्रमिक वर्ग के लिए नहीं। वे कहते हैं कि खुली प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप जिन एकाधिकारी व्यापार संघों की स्थापना हुई है, उन्होंने खुली प्रतियोगिता को ही समाप्त कर दिया है। पूँजीपति लोग संघ बना लेते हैं और विना प्रतियोगिता के लाभ अर्जित करते हैं। इससे श्रमिकों और उपभोक्ता दोनों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

**9. राज्य व्यक्तियों का संगठन मात्र नहीं है** (State is not a mere association of Individuals)-उदारवादी विचारों के अनुसार राज्य एक ऐसी संस्था है जो व्यक्तियों से मिलकर बनी है। आदर्शवादी विचारक इनके इस मत को स्वीकार नहीं करते हैं। ये कहते हैं कि राज्य का अपना जीवन और व्यक्तित्त्व होता है जो व्यक्ति के जीवन और अस्तित्त्व से भिन्न होता है, इसलिए राज्य के विकास और पूर्णता के लिए व्यक्ति पर नियन्त्रण लगाना तथा उसकी स्वतन्त्रता को सीमित करना आवश्यक हो जाता है।

### आधुनिक उदारवाद के मुख्य लक्षण (Main Features of Modern Liberalism)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक उदारवाद, परम्परागत उदारवाद का संशोधित रूप है। इस नाते यह परम्परागत उदारवाद से भिन्न है। इसके प्रमुख लक्षणों की विवेचना इस प्रकार की जा सकती है-

1. आधुनिक उदारवाद उस व्यक्तिवादी विचारधारा का खण्डन करता है जो राज्य को पुलिस राज्य मानती है, जब कि आधुनिक उदारवाद लोक-कल्याणकारी राज्य के सिद्धान्त को स्वीकार करता है।

2. आधुनिक उदारवाद का आरम्भ व्यक्ति से न होकर समूह एवं संस्था से होता है।

3. आधुनिक उदारवाद, परम्परागत उदारवाद की तरह राज्य को बुराई नहीं, बल्कि एक लोक कल्याणकारी संस्था मानता है।

4. आधुनिक उदारवाद आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप का समर्थन करता है, क्योंकि आधुनिक उदारवाद का उदय ही तब हुआ जब राज्य द्वारा अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किये जाने के कारण पूँजीपतियों ने श्रमिकों का शोषण करना प्रारम्भ कर दिया था।

5. आधुनिक उदारवाद सकारात्मक स्वतन्त्रता का समर्थन करता है जो राज्य के कानूनों के पालन करने में ही निहित होती है,

क्योंकि आधुनिक उदारवादी विचारक इस बात को स्वीकार करते हैं कि 'बन्धनों के अभाव' वाली नकारात्मक स्वतन्त्रता वास्तविक स्वतन्त्रता नहीं होती है।

6. आधुनिक उदारवादी विचारक व्यक्ति के अधिकारों को समाज की देन मानते हैं, इसलिए ये व्यक्ति को वे अधिकार देना पसन्द करते हैं, जो व्यक्ति के हित के साथ-साथ सामाजिक हित की भी पूर्ति करते हों।

7. आधुनिक उदारवाद राज्य को एक कल्याणकारी संस्था मानता है, इसीलिए यह राज्य को वे सभी कार्य करने के लिए सौंपता है जिनसे जन कल्याण होता है। इस दृष्टि से आधुनिक उदारवाद के अनुसार राज्य का कार्य-क्षेत्र व्यापक हो जाता है।

8. आधुनिक उदारवाद आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप को उचित ठहराते हुए श्रमिकों के हित और सामाजिक कल्याण के लिए व्यापार तथा उद्योगों पर राज्य के नियंत्रण को स्वीकार करता है।

## उदारवाद तथा समकालीन उदारवाद में अन्तर (Difference between Liberalism and Contemporary Liberalism)

समकालीन (आधुनिक) उदारवाद शास्त्रीय (परम्परागत) उदारवाद का संशोधित रूप है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से परम्परागत उदारवाद में संशोधन किये जाने प्रारम्भ हो गये थे। इन संशोधन के फलस्वरूप उदारवाद का जो रूप प्रकट हुआ, उसे समकालीन उदारवाद का नाम दिया गया। परम्परागत और आधुनिक उदारवाद की विशेषताएं भिन्न भिन्न हैं। निम्नलिखित आधारों पर इनके मध्य मौजूद अन्तर को दर्शाया जा सकता है-

**1. व्यक्तिवाद के सम्बन्ध में अन्तर** (Difference regarding Individualism)-परम्परागत उदारवाद व्यक्तिवाद का समर्थन करता है। व्यक्तिवाद और परम्परागत उदारवाद के मध्य इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि इनके बीच विभाजन-रेखा खींचना अत्यन्त कठिन कार्य है। यही कारण है कि अनेक विद्वान व्यक्तिवाद और परम्परागत उदारवाद को एक ही मान बैठते हैं। इसके विपरीत, आधुनिक उदारवाद व्यक्तिवाद को स्वीकार नहीं करता है। इसके अतिरिक्त, परम्परायत उदारवाद का आरम्भ व्यक्ति से नहीं, बल्कि समूह अथवा संस्था से होता है।

**2. स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में अन्तर** (Difference regarding Liberty)-स्वतन्त्रता के आधार पर भी परम्परागत उदारवाद और आधुनिक उदारवाद में अन्तर है, क्योंकि परम्परागत उदारवाद उस नकारात्मक स्वतन्त्रता पर बल देता है जिससे हमारा अभिप्राय होता है, 'बन्धनों का अभाव'। इसके विपरीत, आधुनिक उदारवाद का सम्बन्ध सकारात्मक स्वतन्त्रता से होता है, जिससे हमारा तात्पर्य होता है-अनुचित की जगह उचित बन्धनों का होना। अन्य शब्दों में, परम्परागत उदारवाद के अन्तर्गत कानून और स्वतन्त्रता को परस्पर विरोधी समझा जाता है, जब कि आधुनिक उदारवाद जिस स्वतन्त्रता पर बल देता हो, वह कानून के पालन करने में ही निहित होती है।

**3. राज्य के सम्बन्ध में अन्तर** (Difference regarding State)- परम्परागत उदारवादी चिन्तक राज्य को एक बुराई मानते हैं क्योंकि इनके मतानुसार राज्य द्वारा निर्मित कानूनों से व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन होता है। अतः राज्य जितने अधिक कानूनों का निर्माण करेगा, व्यक्ति की स्वतन्त्रता उतनी कम हो जायेगी। किन्तु आधुनिक व्यक्तिवाद राज्य को बुराई नहीं मानता है, क्योंकि आधुनिक उदारवादियों के अनुसार राज्य के कानून स्वतन्त्रता का हनन नहीं करते हैं, बल्कि इसकी रक्षा करते हैं। इसके अतिरिक्त लॉक जैसे परम्परागत उदारवादी राज्य को एक मानव-निर्मित संस्था मानते हैं, जब कि ग्रीन जैसे आधुनिक उदारवादी राज्य को एक प्राकृतिक एवं नैतिक संस्था मानते हैं।

**4. राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में अन्तर** (Difference regarding the Functions of State)-परम्परागत उदारवादी राज्य को बहुत ही सीमित कार्य सौंपते हैं, इसीलिए इनका राज्य एक 'पुलिस राज्य' ही है। किन्तु आधुनिक उदारवादी राज्य को वे सभी कार्य सौंपते हैं जो कि सामाजिक कल्याण के लिए आवश्यक हैं, इसीलिए इनका राज्य एक लोक कल्याणकारी संस्था है। परम्परागत उदारवाद का प्रमुख समर्थक हरबर्ट स्पेन्सर तो राज्य को सिर्फ तीन कार्य-बाहरी आक्रमण से नागरिकों की सुरक्षा करना, राज्य के अन्दर कानून और व्यवस्था बनाये रखना तथा न्याय की व्यवस्था करना, करने के लिए कहता है। जब कि

आधुनिक उदारवाद का समर्थक टी. एच. ग्रीन राज्य का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्त्व के विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करना बताता है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह राज्य को अनेक कार्य सौंपता है।

**5. आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप सम्बन्धी अन्तर (Difference regarding the Interference of State in Economic Sphere)**- परम्परागत उदारवाद आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप का विरोध करता है। परम्परागत उदारवादियों की मान्यता है कि राज्य को अहस्तक्षेप की नीति (Policy of Laissez Faire) अपनानी चाहिए और स्वतन्त्र व्यापार एवं खुली प्रतियोगिता का समर्थन करना चाहिए। किन्तु आधुनिक उदारवादी श्रमिकों के हित एवं सामाजिक कल्याण की दृष्टि से राज्य को आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्रदान करते हैं। इसी के साथ-साथ ये व्यापार एवं उद्योगों को राज्य के नियन्त्रण में रखना चाहते हैं। इनका विचार है कि यदि राज्य आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करेगा, तो पूँजीपति वर्ग श्रमिकों का मनमाने ढंग से शोषण करेगा।

**6. प्राकृतिक अधिकारों के सम्बन्ध में अन्तर (**Difference regarding Natural Rights)-परम्परागत उदारवादी विशेषकर लॉक व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों का समर्थन करते हैं। लॉक के अनुसार राज्य की उत्पत्ति से पूर्व की 'प्राकृतिक अवस्या' (State of Nature) में व्यक्ति के पास तीन अधिकार-जीवन का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार और सम्पत्ति का अधिकार, ये तथा राज्य की उत्पत्ति के बाद भी ये अधिकार व्यक्ति के पास हैं क्योंकि व्यक्ति ने इन्हें राज्य को नहीं सौंपा है। इस तरह प्राकृतिक अधिकार वे अधिकार हुए जो प्रकृति ने व्यक्ति को प्रदान किये हैं। इसीलिए लॉक के अनुसार राज्य इन अधिकारों को छू नहीं सकता है। इसके विपरीत, आधुनिक उदारवादी विचारकों का मत है कि अधिकार समाज की देन होते हैं और व्यक्ति के वे ही अधिकार हो सकते हैं जो स्वयं व्यक्ति और समाज के हित में होते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि परम्परागत (शास्त्रीय) उदारवाद और आधुनिक (समकालीन) उदारवाद में व्यापक अन्तर पाया जाता है।